



## जिवेदन

"आत्मा की मुक्ति का क्या उपाय है ?" यह एक विश्वव्यापी तथा सनातन प्रश्न है। ससार के नाशवान सुख-दुःखों की कपेदा निर्बाध तथा अनन्त सुख की लोभ में मानवजाति सदैव से भटकती रही है। इस ससार में भी किस प्रकार अधिष्ठाधिक सुख प्राप्ति पूर्वक जीवन व्यतीत किया जा सकता है यह प्रश्न भी साथ ही सलग्न है। जैन दर्शन में उक्त प्रश्नों का उत्तर बड़े विस्तार तथा वैज्ञानिक रूप से दिया गया है। जैनागम के बृहत्तम भंडार में इन्हीं प्रश्नों का उत्तर भरा पड़ा है। उन्नी बृहत्तम ज्ञान समुद्र का सार आचार्य श्रीमद् उमास्वामी (समय दूसरी जन्माव्दी) ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' में गागर में सागर के समान सेंबो दिया है। इसी कारण इसे मोक्ष शास्त्र भी कहते हैं।

इसके प्रथम सूत्र 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः' में ही मोक्ष का मार्ग दर्शाया गया है। अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मिल कर ही मोक्ष के मार्ग हैं। दूसरे सूत्र में बताया गया है कि तत्त्वों का अध्ययन ही सम्यक् दर्शन है। चौथे सूत्र में जीव, अजीव, आस्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों का निर्देश है। प्रथम दस अध्यायों के ३५७ सूत्रों में इन्हीं सात तत्वों का प्रथमः विस्तृत वर्णन है। प्रथम चार अध्यायों में जीव तत्व का, पाँचवें अध्याय में अजीव तत्व का, छठे और सातवें अध्याय में आस्रव तत्व का, आठवें अध्याय में बध तत्व का, नवें अध्याय में सवर और निर्जरा तत्व का तथा दसवें अध्याय में मोक्ष तत्व का वर्णन है।

जिस प्रकार वेद, बाइबिल तथा कुरान आदि अन्य धर्मों के प्रमुख ग्रंथ हैं उसी प्रकार 'तत्त्वार्थ सूत्र' भी जैन साहित्य का प्रमुख पूज्य ग्रंथ है। जैन धर्मावलम्बियों के दोनों सम्प्रदायों में इस ग्रंथ की समान रूप से मान्यता तथा आदर है। दोनों सम्प्रदायों के मान्य आचार्यों ने इस पर महत्वपूर्ण टीकाएँ लिखी हैं। संस्कृत भाषा में होने के कारण हर व्यक्ति उनको समझ नहीं पाता। हिन्दी में

में भी इसकी अनेक टीकाएँ मिली हैं। यह जिज्ञासा  
कटस्थ होना है। तथा जगत् पाल में जो अज्ञान  
वत्त में नहीं आ पाता। धारण मया आदि में अज्ञान  
पाठ करने के उपरान्त विषय का सत्य ज्ञान प्राप्त में अज्ञान  
ज्ञान का एक विशिष्ट ही आनन्द है। तत्त्वार्थ सूत्र के वि-  
चार हिन्दी में पद्य उद्धरण द्वारा वर्णित आदि के प्रयोग  
अधिक प्रभावोत्पादक बना सका है। इस कारणों से  
तत्त्वार्थ सूत्र के सूत्रों की सरल हिन्दी भाषा में पद्य का  
प्रयोग उत्तम है। मेरा सम्मान ज्ञान प्राप्त का  
टीकाओं की महामया से मुक्त का सत्य ज्ञान का  
देने का प्रयास किया है। यदि सूत्रों का सीधे-सीधे  
रूप में जो दी गई है, पद्य में न हो पाए तो  
प्रत्येक सूत्र को अन्वया में सूत्रक बना जा सकता है।

पहले मेरे मन में प्रभो के मुख का स्मरण था ।  
करने का इच्छा था । कुछ मुख का स्मरण था ।  
मोक्ष मार्ग पर साधन मिल । सम्पत्तिजन ज्ञान  
वस्तु स्वभाव स्वार्थहि ज्ञान । सम्पत्तिजन ज्ञान  
निज स्वभाव, उद्देश्य उद्देश्य । नाम विमर्श ज्ञान  
पहले अविज्ञान मुख का भाव था पहिले था

कहिये या इस कारण अधिकांश सुखों का भोग  
हिया गया है। सुख का पट खट भो गया है।

॥ अथ श्रीमद्भगवद्गीतायां अष्टमोऽध्यायः ॥  
 अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥ धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता  
 युयुत्सवः मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सज्जनाः ॥  
 १ ॥ अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥ द्रुपद उवाच ॥ धर्मक्षेत्रे  
 कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥ मामकाः पाण्डवाश्चैव  
 किमकुर्वत सज्जनाः ॥ १ ॥ अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥  
 द्रुपद उवाच ॥ धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥  
 मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सज्जनाः ॥ १ ॥

# तत्त्वार्थ सूत्र

वी

## विषय सूची

### प्रथम अध्याय

प्रथमोक्त	१	अव्यक्त अव्यक्तज्ञान के स्वामी	१०
बोध का उपाय	२	साधोदयनिमित्तज्ञान के स्वामी	११
सम्पन्नमनस का मतान	३	मन पर्यव ज्ञान के दो भेद	११
सम्पन्नमनस की उत्पत्ति के भेद	४	दोनों भेदों में विशेषता	१२
दोनों के माय (७ सूत्र)	५	अव्यक्त और सम्पन्नमन ज्ञान में अन्तर	१२
निर्गुण के ४ प्रकार	६	मनि तथा ध्युनमात्र का विषय	१३
मनी की ज्ञानने का उपाय	७	अव्यक्तज्ञान का विषय	१३
अन्य उपाय (पट ध्युनयोग)	८	मन पर्यव ज्ञान का विषय	१३
जीवार्थ की ज्ञानने के		केवल ज्ञान का विषय	१३
और उपाय	९	एक माय विषये ज्ञान समग्र है	१४
ज्ञान के भेद	१०	मीत्र विषयज्ञान	१४
पुरुषोक्त पाँच ज्ञान ही प्रमाण है	११	गो विषय प्रकार अद्विष्ट करते हैं	१४
पुरुषोक्त पाँचों ज्ञानों में भेद	१२	मन के ३ भेद	१५
मतिज्ञान के सामान्य	१३		
मात्रज्ञान विषये उत्पन्न			
होता है	१४		
मतिज्ञान के भेद	१५		
अवग्रह आदि ज्ञानों के १२ भेद	१६		
में भेद विभक्त विवेक्षण है	१७		
अवग्रह आदि में अन्तर	१८		
अन्तर अवग्रह विषये नहीं होता	१९		
ध्युन ज्ञान के भेद	१०		

### द्वितीय अध्याय

जीव के पाँच भाग	१७
इन भागों के भेद	१८
औपमनिक भाग के दो भेद	१८
साधिका भाग के १ भेद	१९
विषय भाग के १८ भेद	२०

अः १११ धातु के २१ भेद	२१	जरीमो का वर्णन	२१
अः ११२ धातु के भीत भेद	२१	विषय का वर्णन यत् कीडा र मोरे १	२०
अः ११३ धातु का उपाध	२२	मह माध विगरे जरीम मयत १	२१
अः ११४ धातु के २२	२२	विगरेम यथा उपाध	२१
अः ११५ धातु के २३	२३	विगरेम यथा यथा दरीद	२१
अः ११६ धातु के २३	२३	आपराध जरीम र मयत	२२
अः ११७ धातु के २३	२३	जरीम र मयत र मयत	२२
अः ११८ धातु के २४	२४	पूर्ण आ १ नाना का र मयत	२२
अः ११९ धातु के २४	२४		

— — — —

## जीमन्त अष्टाव

अः १२० धातु के २४	२४	अः १२१ धातु के २४	२४
अः १२२ धातु के २४	२४	अः १२३ धातु के २४	२४
अः १२४ धातु के २४	२४	अः १२५ धातु के २४	२४
अः १२६ धातु के २४	२४	अः १२७ धातु के २४	२४
अः १२८ धातु के २४	२४	अः १२९ धातु के २४	२४
अः १३० धातु के २४	२४	अः १३१ धातु के २४	२४
अः १३२ धातु के २४	२४	अः १३३ धातु के २४	२४
अः १३४ धातु के २४	२४	अः १३५ धातु के २४	२४
अः १३६ धातु के २४	२४	अः १३७ धातु के २४	२४
अः १३८ धातु के २४	२४	अः १३९ धातु के २४	२४
अः १४० धातु के २४	२४	अः १४१ धातु के २४	२४
अः १४२ धातु के २४	२४	अः १४३ धातु के २४	२४
अः १४४ धातु के २४	२४	अः १४५ धातु के २४	२४
अः १४६ धातु के २४	२४	अः १४७ धातु के २४	२४
अः १४८ धातु के २४	२४	अः १४९ धातु के २४	२४
अः १५० धातु के २४	२४	अः १५१ धातु के २४	२४

[illegible]

अनिष्टि सविभाग धर्म के अतिथार	११४	प्रवेश बंध का कथन	१११
सत्संघना के अतिथार	११५	कर्मों की गुण प्रकृति	१११
दान का स्वरूप	११६	कर्मों की पाप प्रकृति	११४
दान के पाप में विशेषता	११६		
		-----	
आठवीं अध्याय		नवीं अध्याय	
ब्रह्म के कारण	११७	मकर का कारण	११६
ब्रह्म का स्वरूप	११९	मकर के कारण	११६
ब्रह्म के भेद	११९	मकर का प्रमुख कारण	११७
भूत प्रकृति ब्रह्म के ८ भेद	१२०	गुण का कारण	११७
आठों कर्मों की उत्तर प्रकृतियों	१२१	समिति के ५ भेद	११८
जायावरण कर्म के ५ भेद	१२१	समिति और गुण में अंतर	११८
हानावरण कर्म के ९ भेद	१२१	दम धर्म	११८
वेदनीय कर्म के २ भेद	१२२	बाह्य अनुश्रवण (भाषना)	११९
मोहनीय कर्म के २८ भेद	१२३	परीपह सहने का उद्देश्य	१२०
आयु कर्म के ४ भेद	१२५	परीपहों के २२ स्वरूप	१२०
नाम कर्म की ४२ प्रकृतियाँ	१२५	विभिन्न गुणस्थानों में परिपह	१२२
गोत्र कर्म के २ भेद	१२६	किस कर्मोदय से कौन परिपह	१२३
अन्तराय कर्म के ५ भेद	१२९	एक साथ अधिकतम परिपह	१२४
कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति	१२९	चारित्र्य के भेद	१२५
कर्मों की जघन्य स्थिति	१३१	बाह्य तप के ६ भेद	१२५
अनुभय बंध का कथन	१३१	बाह्यस्नेह तथा परिपह में अंतर	१२६
कर्म के समान फल	१३२	अभ्युत्तर तप के ६ भेद	१२७
पत्नीपराय कर्म निर्जरा	१३२	अभ्युत्तर तपों के उपभेद	१२७
		प्रायश्चित्त के ९ भेद	१२७

विनय तप के ४ भेद	१४८	बीचार का सतण	११७
ईसावाय तप के १० भेद	१४९	पृथक्त्व वितर्क	११८
स्वाध्याय तप के ५ भेद	१५०	एकत्व वितर्क	११८
भुम्भर्ग (त्याग) के २ भेद	१५०	मूलम क्रिया प्रतिपत्ति	११८
त्याग, परिग्रह त्याग तथा		भुम्भर्ग क्रिया निर्वर्ति	११९
भुम्भर्ग में अन्तर	१५०	सम्पत्तिपत्तियों के असमान निर्वर्त	११९
ध्यान का स्वरूप	१५१	निर्णयों के भेद	१२०
ध्यान के ४ भेद	१५१	पुनारु आदि मुनियों की अन्य	
		विशेषणाएँ	१२१
भार्त ध्यान के ४ भेद	१५२		
भार्त ध्यान के द्वारक	१५३	ब्रह्म की अभ्यास	
रौद्र ध्यान के भेद	१५३	देवन ज्ञान कब होता है	१२४
रौद्र ध्यान के द्वारक	१५३	मोक्ष का सतण और कारण	१२४
धर्म ध्यान का स्वरूप	१५४	कर्मों की निर्वर्त का फल	१२५
शुक्ल ध्यान के स्वाधी	१५४	मुक्तावस्था में शेष शारीरिक भाव	१२५
शुक्ल ध्यान के ४ भेद	१५५	मुक्त जीव की ऊर्ध्व गति	१२६
शुक्ल ध्यान का आलम्बन	१५६	ऊर्ध्वगति का कारण	१२७
आदि के २ शुक्ल ध्यानों का		मुक्त जीव सोक के अन्त तक ही	
विशेष कथन	१५६	क्यों जाता है	१२८
इन कथन का अपवाद	१५६	मुक्त जीवों में परम्पर	
वितर्क का सतण	१५७	भेद व्यवहार का विचार	१२८



## “चौतीसी स्तुति”

(रचयिता : मन्दकिशोर जैन, एम० ए०)

तीर्थंकर चौरीम हमारें मुद्रि जिनही गर बागड टारे ॥

आदि, अत्रि, सभब अभिनन्दन,

मुमति, पद्मप्रभु, करलो वदन ।

थी मुगार्गे, चन्दा प्रभु प्यारें ॥ तीर्थंकर ० ॥

पुण्यदन, शान्त, मुग्धकारी,

प्रभु, शंयाम की भोभा प्यारी ।

हुखियों के गब कष्ट निवारें ॥ तीर्थंकर ० ॥

बाता पूज्य, पुनि विमल, सनता,

धर्म, शान्ति, सोहे चगनता ।

आए हैं हम शरण तिहारें ॥ तीर्थंकर ० ॥

कृष्णनाथ जी, अरह यशस्वी,

मलिननाथ से महत तपस्वी ।

जिन तप कर अप सारे जारे ॥ तीर्थंकर ० ॥

मुनिमुग्रन, नमिनाथ हमारें,

नेमिनाथ जी राजन प्यारें ।

मौर फेंक तप हेतु सिधारें ॥ तीर्थंकर ० ॥

पार्श्वनाथ की छवि अति न्यारी,

शेषनाथ करते रखवारी ।

मामा की आँखों के तारे ॥ तीर्थंकर ० ॥

महावीर का यश अति भारी,

बालपने जिन दीक्षा धारी ।

त्रिशला भी, सिद्धार्थ दुनारें ॥ तीर्थंकर ० ॥

शक्ति भाव से जो नित ध्यावे,

जय का आवागमन मिटावे ।

क्यों नहि तर-भव जनम मुधारें ॥ तीर्थंकर ० ॥

# तत्त्वार्थ सूत्र

## मंगलाचरण

१:—मोक्षमार्गस्य नेतारं भित्तारं चन्द्रकान्तम् ।  
ज्ञातारं विश्ववश्वानां यन्मे नन्द्यन्ममम् ॥

॥ या :—कर्म रूप ययंत विज्ञानम् ॥

मोक्ष मार्गं पुनि विज्ञे सत्यम् ॥

विश्व तत्त्व ज्ञाने विज्ञानम् ॥

संस्कृत ११ ॥ ११ ॥ -

मूल - सत्त्वगुणरूपं ज्ञानं तत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानम् ॥१॥

भाषा - सत्त्वगुण दर्शन गुण की ज्ञान ।  
 गुण उरुत है सत्त्वगुण ज्ञान ॥  
 सत्त्वगुण चरित्त पावे ज्ञान ।  
 प्रथम मीत मोक्ष मार्ग को पावे ॥१॥

सत्त्वगुणरूपं ज्ञानं तत्त्वज्ञानम् -

मूल - सत्त्वगुणरूपं ज्ञानं तत्त्वज्ञानम् ॥१॥

भाषा - सत्त्वगुण स्वभाव कहा तत्त्वज्ञान ।  
 उसको भविजन जाने सार्थ ॥  
 ता पर होय अटल ध्यान ।  
 सत्त्वगुण दर्शन सो ही मान ॥१॥

सत्त्वगुणरूपं ज्ञानं तत्त्वज्ञानम् के भेद -

मूल :- तत्त्वज्ञानादधिगमज्ञानम् ॥३॥

भाषा :- उपजे होहि प्रकार विशेष ।

निज स्वभाव अथ पर उपदेश ॥

निजहि स्वभाव 'निसर्गज्ञ' कहा ।

नाम 'अधिगमज्ञ' हुआ सहा ॥३॥

तत्त्वों के नाम :-

मूल :- जीवाजीवाग्रव-यघ-सुवर-निर्जरा-मोक्षस्तत्त्वम् ॥४॥

भाषा :- सात तत्त्व हैं—'जीव', 'अजीव' ।

'आश्रय', 'बंध' जगत की नींव ॥

पञ्चम 'संवर' पुनि 'निर्जरा' ।

सप्तम 'मोक्ष' महा सुख भरा ॥४॥

निक्षेपों के प्रकार :-

मूल :- नाम स्थापना द्रव्य-भावतस्तन्यास ॥५॥

भाषा :- लोक काज हित यिन गुणसार ।

नाम निक्षेपण चार प्रकार ॥

'नाम', 'स्थापना', 'द्रव्य' निक्षेप ।

सपर्याय 'भाव' निक्षेप ॥५॥

५ वें सूत्र का भावार्थ :-

सो चारों अक्षर लीजे ज्ञान । जा सो ही सबकी पहिचान ॥

'नाम'-धीर रख दीजे कीय । आवश्यक नहिं गुण सो होय ॥

दो प्रकार 'स्थापना' बसाए । 'तदाकार' जिन मूर्ति सुहाए ॥

घोड़े, हाथी, ऊँट बिचार । शतरज हि के 'अतदाकार' ॥

जिस पदार्थ से प्रतिमा होय । कह दीजे यदि प्रतिमा सोय ॥

शक्ति परिणमन की बतलाए । सो ही 'द्रव्य' निक्षेप कहाए ॥

जैसा हो तस करहि बखान । इन्द्र नहे इन्द्रहि गुणखान ॥

वर्तमान कहिए पर्याय । सो ही 'भाव' निक्षेप कहाए ॥५॥

मन्त्रों को जानने का उपाय -

मूल - प्रमाणनयेऽभिमत ॥६॥

भाषा - जीव-अजीव परास्व जीव ।

इनका ज्ञान कराने योग्य ॥

सकल वस्तु का ज्ञान 'प्रमाण' ।

एक देश 'नय' सीजे जान ॥६॥

जीव आदि तन्त्रों को जानने के अग्य महायक उपाय :-

मूल - निर्वैश-स्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थिति-विधानन ॥७॥

भाषा - घट अनुयोग महायक जान ।

पूर्ण वस्तु कर होये ज्ञान ॥

सत-ध्यान कहा 'निर्वैश' ।

अरु 'स्वामित्व' न संशय लेश ॥

सीजा 'साधन' पुनि 'अधिकरण' ।

'स्थिति' ही है पंचम चरण ॥

घट 'विधान' कहावे वही ।

भेद-प्रमेद बतावे सही ॥७॥

■ ये मूल का भावार्थ :-

अधिकारी 'स्वामित्व' बताए । सम्यकदर्शन जीव लहाए ॥

उत्पत्ति हि कारण बतलाए । सो 'साधन' अनुयोग कहाए ॥

'अधिकरण' वस्तु आधार । 'स्थिति' कहिए काल विचार ॥७॥

जीवादि को जानने के कुछ और सहायक उपाय :-

मूल:-सत्प्रस्था-क्षेत्र-स्पर्शन कालान्तर-भावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥

भाषा :- 'सत्', 'संस्था' अह क्षेत्र' विचार ।

'स्पर्शन', 'काल' भेद उरधार ॥

'अन्तर', 'भाव' आदि अनुयोग ।

'अल्पबहुत्व' सु अष्ट प्रयोग ॥८॥

८ वें सूत्र की व्याख्या—

'सत्' है जो अस्तित्व बताए । 'संस्था' गिनती भेद कहाए ॥

मिले जहाँ सो 'क्षेत्र' बखान । 'स्पर्शन' विचरण क्षेत्रहि जान ॥

'काल'—समय जानें सब कोय । विरह काल ही 'अन्तर' होय ॥

एक दत्ता तज दूजी लहे । पुनि पहली में आकर रहे ॥

औपशमिक आदिक त्रय 'भाव' । तुलना 'अल्पबहुत्व' बनाव ॥८॥

ज्ञान के भेद :-

मूल.-मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानि ज्ञानम् ॥९॥

भाषा :- ज्ञान कहे आगम में पंच ।

'मति', 'श्रुत', 'अवधि' न संशय रंच ॥

चौथा 'मन पर्यय' ही कहा ।

'पंचम 'केवल' जिनवर लहा ॥९॥

मनो ११ वीं ज्ञान की परमाणु है -

मूत्र - मन्त्रमात्र ॥१०॥

भाषा - सो ही परमाज्ञान परमान ।

इन्द्रिय ज्ञान मगल्य ज्ञान ॥

मूत्रमद्यन्तु हो या अति दूर ।

इन्द्रिय किम जाने मरपूर ॥१०॥

पूर्वोक्त दोनो ज्ञानों में भेद -

मूत्र - भाषा परीक्षाम ॥ ११ ॥

प्रत्यक्षमभ्यन्त ॥ १२ ॥

भाषा - पर वश उपजें सो ही मान ।

दो परीक्ष हैं मति, श्रुत ज्ञान ॥११॥

अवधि आदि त्रय अतिम जोय ।

हैं प्रत्यक्ष कहावें सोय ॥१२॥

११ वें व १२ वें मूत्र का भावार्थ—

इन्द्रिय, मन, उपदेश सहाय । परवश सोइ परीक्षा कहाय ॥११॥

अक्ष नाम आत्म का मान । ता सो ही प्रत्यक्ष बखान ॥

इन्द्रिय आदि सहाय न होय । आत्म से ही उपजें सोय ॥१२॥

मतिज्ञान के नामान्तर :—

मूल :—मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताप्रमिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

भाषा :—पुनि नामान्तर है मतिज्ञान ।

‘मति’, ‘स्मृति’, ‘संज्ञा’, ‘चिन्ता’ मान ॥

साधन करे साध्य अनुमान ।

पंचम ‘अमिनिबोध’ सो जान ॥१३॥

१३ वें मूल का भावार्थ—

इन्द्रिय मनहि अयग्रह होय । रूप ग्रहण ‘मति’ कहिए मोय ॥

याद पुरानी ‘स्मृति’ वही । जय तय मन मे आवे सही ॥

पूर्व वस्तु से करहि मिलान । जोड़ रूप सो ‘संज्ञा’ जान ॥

धूम देख कर अग्नि द्विज्ञान । तर्क सोइ ‘चिन्ता’ करि जान ॥१३॥

मतिज्ञान जिससे उत्पन्न होता है —

मूल :—तदिन्द्रियानिन्द्रिय-निमित्तम् ॥१४॥

भाषा :—पंचेन्द्रिय अरु मन के मिले ।

मतिज्ञान आत्म में मिले ॥१४॥

मतिज्ञान के भेद :—

मूल :—अयग्रहेहावाय धारणा ॥१५॥

भाषा :—‘अयग्रह’, ‘ईहा’ और ‘अवाय’ ।

भेद ‘धारणा’ सहित बताय ॥१५॥

१५ वें मूल की व्याख्या—

इन्द्रिय दर्शन पहले मान । तत्क्षण होय ‘अयग्रह’ जान ॥

इच्छा होवे ज्ञान विरोध । ‘ईहा’ सोइ अनिश्चय सेश ॥

टोक वस्तु का निर्णय होय । भेद ‘अवाय’ बहावे सोय ॥

अविस्मरण ‘धारणा’ कहाय । मतिज्ञान चव भेद बताय ॥१५॥



भुक्त' के भेद -

मूल - 'अग प्रविष्ट' इति इति ॥२०॥

भाषा - श्री भक्तिभाग गति भुक्तभाग ।

ताके भुक्त भेद दो भाग ॥

'अग बाह्य' कह्यो बहुत भेद ।

'अग प्रविष्ट' तु इति भेद ॥२०॥

२० व मूल का भावार्थ -

ज्ञान अद्वैत के रूप ज्ञान । दिव्य-विनि उपदेश ममान ॥

मनस्य इति अग बनाए । मी ही 'अग प्रविष्ट' कहाए ॥

मनस्य अथ ज्ञान भाषाए । मी ही 'अग बाह्य' निगुहाए ॥२०॥

भव प्रत्यय अवधिज्ञान के स्वामी -

मूल - भव प्रत्ययोऽवधिदेव-नारकाणाम् ॥२१॥

भाषा - अवधिज्ञान दो भेद बताए ।

प्रथम-सो 'भव प्रत्यय' कहलाए ॥

देव नारकीयों को होय ।

भव ही कारण कहिए सोय ॥२१॥

२१ वे मूल का भावार्थ :-

आयु, नाम कर्मज पर्याय । आगम मे सो भव कहलाए ॥

देव, नारकी जन्में जोय । अवधिज्ञान जन्महि से होय ॥२१॥

क्षयोपशमनिमित्तः अवधिज्ञान के स्थानी :-

सूत्र :- क्षयोपशमनिमित्तः षट्दिव्यः ज्ञेयानाम् ॥२२॥

भाषा :- है द्वितीय 'क्षयोपशमनिमित्त' ।

षट् प्रकार सुनिय पर चित्त ॥

यह मनुष्य तिर्यचन होय ।

'गुण प्रत्यय' भी कहिए सोय ॥२२॥

२२ वें सूत्र का भावार्थ :-

क्षय उपशम कारण हि प्रधान । भय नहि, सो गुण प्रत्यय जान ॥  
स्वामि जीव सँग जावे जोए । 'अनुगामी' ही कहिए सोए ॥  
सग साथ नहि जीवहि जाय । सोइ 'अननुगामी' कहलाए ॥  
परिणामहि विगुडि वग जान । 'वर्धमान' नित प्रति सो मान ॥  
कारण मन्त्रेणित परिणाम । 'हीयमान' षट् आठो याम ॥  
षट्-बट् दिन जो एरु ममान । ताहि 'अवस्थित' कहते जान ॥  
आमें जय तय षट् बट् होय । अवधिज्ञान 'अनवस्थित' सोय ॥२२॥

मनः पर्यय ज्ञान के भेद :-

सूत्र :- श्रुजु-विपुलमती मनः पर्ययः ॥२३॥

भाषा :- मन पर्यय के भी दो काम ।

'श्रुजुमति' और 'विपुलमति' नाम ॥२३॥

२३ वें सूत्र का भावार्थ :-

सरल रूप में पर मन जोय । ज्ञान ताहि का 'श्रुजुमति' होय ॥  
सरल, जटिल सबही का ज्ञान । ता का नाम 'विपुलमति' जान ॥२३॥

• • • • •

७१. • • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

• • • • • ॥

२१ व मृग का भावार्थ —

• • • • • ॥

• • • • • ॥

क्षयोपशमनिमित्तः अवधिज्ञान के स्वामी :-

मूल :- क्षयोपशमनिमित्तः यद्विषयः सोपाणाम् ॥२२॥

भाषा :- है द्वितीय 'क्षयोपशमनिमित्त' ।

यह प्रकार सुनिय धर चित्त ॥

यह मनुष्य तिर्यचन होय ।

'गुण प्रत्यय' भी कहिए सोय ॥२२॥

२२ वें मूल का भावार्थ :-

क्षय उपशम कारण हि प्रधान । भय नहि, सो गुण प्रत्यय जान ॥

स्वामि जीव सँग जाये जोए । 'अनुगामी' ही कहिए, सोए ॥

गंग साथ नहि जीवहि जाय । खाँद 'अमनुगामी' कहमाए ॥

परिणामहि विशुद्धि वश जान । 'वर्धमान' नित प्रति सो मान ॥

कारण मुक्तेगित परिणाम । 'हीयमान' घट आठो याम ॥

घट-बड़ यिन जो एक समान । ताहि 'अवस्थित' कहने जान ॥

जामें जब तब घट बड़ होय । अवधिज्ञान 'अनवस्थित' सोय ॥२२॥

मनः पर्यय ज्ञान के भेद :-

मूल :- अजु विपुलमती मनः पर्ययः ॥२३॥

भाषा :- मन पर्यय के भी दो काम ।

'अजुमति' और 'विपुलमति' नाम ॥२३॥

२३ वें मूल का भावार्थ :-

मरल रूप में पर मन जोय । ज्ञान ताहि का 'अजुमति' होय ॥

मरल, जटिल सबही का ज्ञान । ता का नाम 'विपुलमति' जान ॥२३॥

मन योग के नाम भेदों में विशेषता —

सूत्र — विशुद्धचित्तात्मनो नदिभ्यः ॥२३॥

भाषा — दोनों के दो भेद विशेष ।

प्रथम 'विशुद्धि' न संशय तेश ॥

ज्ञान आवरण हटते कहे ।

'अप्रतिभात' सो संयम बड़े ॥२४॥

अवधितान और मन पर्यय ज्ञान में अन्तर —

सूत्र — विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि त्रिगुणयोगाधि-मन पर्यययोः ॥२५॥

भाषा — अवधि और मन पर्यय ज्ञान ।

चार अपेक्षा अन्तर जान ॥

प्रथम 'विशुद्धि', 'क्षेत्र' पुनि कहा ।

'स्वामी', 'विषय' भेद का रहा ॥२५॥

२५ वे सूत्र का भावार्थ :-

सूक्ष्मपक्ष में अन्तर मान । आगम ताहि 'विशुद्धि' बतान ॥

'क्षेत्र' होय अन्तर स्थान । 'स्वामी' सो चिन्तकी हो जान ॥

सैनी पञ्चेन्द्रिय गति चार । तिनके अवधिज्ञान चित्तधार ॥

कर्म मूढि के मानव मान । कुछ में ही मन पर्यय ज्ञान ॥

ज्ञान कौन वस्तु का होय । 'विषय' भेद ही कहिए सोय ॥२५॥

नय के भेद :—

मूल :- नैगम-संग्रह-व्यवहार-जुमूत्रशब्द-समभिरुद्ध-भूतानयाः ॥३३॥

भाषा :— 'नैगम', 'संग्रह', अरु 'व्यवहार' ।

नय आगम में विविध प्रकार ॥

'समभिरुद्ध', 'ऋजु सूत्र' व शब्द ।

'एवंमूत' सप्त उपलब्ध ॥३३॥

३३ वें मूत्र का भावार्थ :—

हर पदार्थ में घर्म अनेक । ज्ञान नयों से हो प्रत्येक ॥

भूत, भविष्यति जो पर्याय । वर्तमान में सो यत्तलाय ॥

रत्नकर ईषन, पानी, धान । कहे पकाता भोजन पान ॥

आगे जो है बनना मान । पूर्ण रूप दे 'नैगम' जान ॥

एक कहे पूरा समुदाग । या उसकी विभिन्न पर्याय ॥

द्रव्य कहे सब द्रव्यहि जान । सैन्य कहे कुल सैन्य बखान ॥

संग्रह रूप ज्ञान में आए । सो ही 'संग्रह' नय कहलाए ॥

संग्रह वस नहि पूर्ण विचार । भेद-प्रभेद करे 'व्यवहार' ॥

भूत, भविष्यत को तज देय । वर्तमान पर्यायहि लेय ॥

एक समय इक ही पर्याय । मनुष्यायुष्यन्त कहाए ॥

ग्रहण दृश्य पर्यायहि जान । सो नय ही 'ऋजुमूत्र' बखान ॥

संख्या, लिंग आदि व्यभिचार । दूर 'शब्द' से हो चित्तधार ॥

त्रियां, पुरुष, कालादिक भेद । से अर्थों में होय प्रभेद ॥

अर्थ भेद हो विन व्यभिचार । एक वस्तु में कई प्रकार ॥

एक माय कितने ज्ञान हो गाने ॥ -

मूल :- एतदीनि भाव्यानि युगपदेष्टमिमा चतुर्ग्यः ॥३०॥

भाषा :- ज्ञान जीव में निम्न प्रकार ।

एक होय या क्रमशः चार ॥

एक होय तब केवल ज्ञान ।

दो सँग हों बस मति श्रुत ज्ञान ॥

तीन होय मति श्रुत सँग लेख ।

अवधि, मनः पर्यय में एक ॥

चार साथ हों 'केवस्' छोड़ ।

और न कोई नूतन जोड़ ॥३०॥

तीन मिथ्याज्ञान :-

मूल :- मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥

भाषा :- मति, श्रुत, अवधि विपर्यय सहित ।

तीन ज्ञान करते हैं अहित ॥

कुमति, कुश्रुत आदिक त्रय नाम ।

अहित रूप ही तिनके काम ॥३१॥

मिथ्याज्ञान किस प्रकार अहित करते है :-

मूल :- सत्सत्तोरविशेषाद्य दृग्द्वीपलब्धे रुन्मत्तवत् ॥३२॥

भाषा :- सत् अरु असत् न कर पहिचान ।

मिथ्यावृष्टि भ्रमित-मति-ज्ञान ॥

सो उन्मत्त पुरुष की नाय ।

यस्तु ग्रहण में निज रुचि लाय ॥३२॥

नय के भेद :—

मूल :- नैगम-संग्रह-व्यवहार-जुमूत्रशब्द-ममभिरुद्धवभूतानया ॥३३॥

भाषा :— 'नैगम', 'संग्रह', अरु 'व्यवहार' ।

नय आगम में विविध प्रकार ॥

'समभिरुद्ध', 'ऋजु सूत्र' व शब्द ।

'एवंभूत' सप्त उपलब्ध ॥३३॥

३३ वें सूत्र का भावार्थ :—

हर पदार्थ में घर्म अनेक । ज्ञान नयों से हो प्रत्येक ॥  
 भूत, भविष्यति जो पर्याय । वर्तमान में सो वतलाय ॥  
 रत्नकर ईधन, पानी, धान । बहे पकाता भोजन पान ॥  
 आगे जो है बनना मान । पूर्ण रूप दे 'नैगम' जान ॥  
 एक बहे पूरा समुदाग । या उसकी विभिन्न पर्याय ॥  
 द्रव्य बहे सब द्रव्यहि जान । गैर्य कहें कुन सैग्य ग्रहान ॥  
 संग्रह रूप ज्ञान में आए । गोही 'संग्रह' नय कहनाए ॥  
 संग्रह वदा नहि पूर्ण विचार । भेद-प्रभेद करे 'व्यवहार' ॥  
 भूत, भविष्यत को तज देय । वर्तमान पर्यायहि सेय ॥  
 एक समय इक ही पर्याय । मनुष्यायुपर्यन्त कहाए ॥  
 ग्रहण दृश्य पर्यायहि जान । सो नय ही 'ऋजुसूत्र' बखान ॥  
 सभ्या, लिंग आदि व्यभिचार । दूर 'शब्द' से हो चित्तधार ॥  
 त्रिया, पुरुष, कालादिक भेद । से अर्थों में होय प्रभेद ॥  
 अर्थ भेद हो विन व्यभिचार । एक वस्तु में कई प्रकार ॥



इन भावों के भेद —

मूल — दिनवाष्टादर्शनविशतिविभेदा यथाश्रमम् ॥२॥

भाषा — दो, नव, भेद प्रथम दो कहे ।

तोजे के अटठारह रहे ॥

इविकस भेद 'औदयिक' भाव ।

'परिणामिक' के त्रय मन लाव ॥२॥

औपशमिक भाव के दो भेद —

मूल — सम्यक्त्वचारित्र्ये ॥३॥

भाषा :— उपशम कर्म प्रकृति जय सात ।

'औपशमिक सम्यक्त्व' कहात ॥

उपशम मोहनीय सब मित्र ।

कहते 'औपशमिक-चारित्र्य' ॥३॥

रे मूल की व्याख्या —

'स्तानुबन्धी' विक्षोभ । क्रोध, मान, माया अह लोभ ॥  
'व्यावर्हि', 'सम्यकमिथ्यात्व' ।

अह 'सम्यक्त्व' सहित सो सान ॥  
'प्रकृतियों के उपशमे । जो सम्यक्त्व आत्म में जमे ॥  
'शमिक सम्यक्त्व यखान । भविजन मन कीजे श्रद्धान ॥  
'स्तानुबन्धी' इक जान । दृजी सोइ 'अप्रत्याख्यान' ॥  
ती 'प्रत्याख्यान' बताय । चीधी है 'सञ्जस्तन' कषाय ॥  
व, मान, माया अह लोभ । गुणन किए सोजह विक्षोभ ॥  
कषाय पुनि नो वितथार ।

'हास्य' 'अरति' 'रति' 'शोक' विचार ॥  
व' हि, 'जुगुप्सा' हो मन खेद । 'स्त्री'- 'पुरुष'- 'नपुंसक' धेद ॥  
'म्यात्व' हि, 'सम्यकमिथ्यात्व' ।

अह 'सम्यक्त्व' द्वि त्रय हो जात ॥  
हनीय अटठारह मित्र । उपशम 'औपशमिक चारित्र्य' ॥३॥



संज्ञी (अर्थात् मन सहित) जीव :-

मूल :- सज्जिन. समनस्काः ॥२४॥

भाषा :- मन घुत जो सो संज्ञी जान ।

बिन मन जीव असंज्ञी मान ॥२४॥

नया शरीर धारण हेतु जीव का गमन :-

मूल :- विग्रहगती कर्मयोगः ॥२५॥

भाषा :- कर्मयोग विग्रहगति गहे ।

तय नय कर्म जीव पुनि सहे ॥

मृत्यु धान से छय कर बाए ।

नूतन जन्म जगह में बाए ॥२५॥

जीव और पुद्गलों के गमन का तम :-

मूल :- अनुश्रेणी गतिः ॥२६॥

भाषा :- पुद्गल जीवादिक चित्तधार ।

गति होती श्रेणी अनुसार ॥२६॥

२६ वें सूत्र की व्याख्या :-

लोक मध्य से ऊपर जोय । नीचे या निरक्षी दिश होय ॥

मम-प्रदेश की मोय बनार । श्रेणी बहनाली चित्तधार ॥२६॥

परमोक्त जाते समय गंतारी जीव की गति :-

मूल :- विग्रहवती च सत्तारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥२८॥

भाषा :- गति संतारी जीवहि जान ।

चार समय से पहले मान ॥

जो नहि होये सोय अतीय ।

मोड़ तीन तक सेवे जीय ॥२८॥

बिन मोड़ की गति में समय :-

मूल :- एक समयाऽविग्रहा ॥२९॥

भाषा :- बिन मोड़ों की श्रुतगति लेख ।

मात्र समय लगता है एक ॥२९॥

विग्रहगति में आहारक और अनाहारक का नियम :-

मूल :- एक द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥३०॥

भाषा - विग्रह-गति जीवहि जब होय ।

अन-आहारक कहिए सोय ॥

इक-दो-तीन समय परिमान ।

अधिकाधिक यह गति है जान ॥

सीधा मार्ग जीय जब होय ।

आहारक हो जावे सोय ॥३०॥

३० वें सूत्र की व्याख्या :-

योग्य शरीरहि पुद्गल जान । ग्रहण करे जब जीव न मान ॥

अनाहार सो ही चित्तधार । अन-आहारक जीव विचार ॥३०॥

:— परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥

१ :— ओदारिक तो हे साकार ।

सूक्ष्म, सूक्ष्मतर क्रमशः चार ॥३७॥

:—प्रदेशतोऽप्येयगुण प्राक् तैजसात् ॥३८॥

॥ :— अधिकाधिय घनत्व मु जानु ।

असंख्यात गुने परमानु ॥

पहले से दूजे में कहे ।

दूजे से आहारक लहे ॥३८॥

':— अनन्तगुणे परे ॥३९॥ अप्रतिघाते ॥४०॥

या :— हैं अनन्तगुन तैजस माहि ।

अन्तहु सो क्रम संशय नाहि ॥३९॥

अप्रतिघाती अंतिम बोध ।

अग जग रोक सके ना कोय ॥४०॥

।ह पिंड मे अग्नि समान । घुस सकते सर्वत्रहि जान ॥४०॥

तस और कर्मण शरीरो का आत्मा से संबंध :—

न :— अनादिसम्बन्धे च ॥४१॥

।या :— तैजस और कर्मण बोध ।

आत्म से सम्बंधित सोय ॥

आत्म साथ सदा मु अनादि ।

बंध निजंरा नय सों सादि ॥४१॥

एक जीव के एक साथ कितने शरीर हो सकते हैं :—

मूल :— तदादीनि भज्यानि गुणपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥४३॥

भाषा :— जीव-शरीर सो निम्न प्रकार ।

द्वय हों या फिर क्रम से चार ॥

‘तैजस’, ‘कामण’ विग्रहगती ।

औदारिक युक्त आगे गती ॥

चार सभी हों सुनिए नेक ।

‘आहारक’, ‘वैक्रियिक’ में एक ॥

एक साथ नाहि पंच शरीर ।

निविवाद सुनिए घर धीर ॥४३॥

मूल :— निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

भाषा :— अथ शरीर प्रथमहि उपभोग ।

अंतिम द्वय में नाहि सुयोग ॥४४॥

मूल :— गर्भ-सम्प्लुतजमाद्यम् ॥४५॥ औपपादिक वैक्रियिकम् ॥४६॥

भाषा :— जन्मे गर्भ, सम्प्लुत जोय ।

सो शरीर औदारिक होय ॥४५॥

जो शरीर जन्मे ‘उपवाद’ ।

होय वैक्रियिक बिन उपवाद ॥४६॥

मूल :— लब्धिप्रत्यय च ॥४७॥ तैजसमपि ॥४८॥

भाषा :— तप से उपजे लब्धि विशेष ।

तासों भी वैक्रियिक अशेष ॥४७॥

लब्धि सहित तैजस है दोय ।

कांति प्रदायक सबमें होय ॥

दूजा तप विशेष से लहे ।

शुभ अथ अशुभ भेद दो कहे ॥४८॥

मूल :- पर पर सूक्ष्मम् ॥३७॥

भाषा :- औदारिक तो है साकार ।

सूक्ष्म, सूक्ष्मतर क्रमशः चार ॥३७॥

मूल :- प्रदेशतोऽसंख्येयगुण प्राक् तैजसात् ॥३८॥

भाषा :- अधिकाधिक्य घनत्व सु जानु ।

असंख्यात गुने परमानु ॥

पहले से बूजे में कहे ।

बूजे से आहारक लहे ॥३८॥

मूल :- अनन्तगुणे परे ॥३९॥ अप्रतिघाते ॥४०॥

भाषा :- हैं अनन्तगुन तैजस माँहि ।

अन्तहु सो क्रम संशय नाहि ॥३९॥

अप्रतिघाती अंतिम दोय ।

अग जग रोक सके ना कोय ॥४०॥

लोह पिंड में अग्नि समान । भूत सबसे सर्वत्रहि जान ॥४०॥

तैजस और कार्मण शरीरों का आत्मा से सबध :-

मूल :- अनादिसम्बन्धे च ॥४१॥

भाषा :- तैजस और कार्मण दोय ।

आत्म से सम्बंधित सोय ॥

आत्म साथ सदा सु अनादि ।

बंध निजैरा नय सौ सादि ॥४१॥

तैजस कार्मण सब जीवों के होते हैं :-

मूल :- सर्वस्य ॥४२॥

भाषा :- तैजस कार्मण अंतिम दोय ।

सब संसारो जीवहि होय ॥४२॥

एक जीव के एक साथ कितने शरीर हो सकते हैं :—

:— तदादीनि भज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥४३॥

१ :— जोव-शरीर सो निम्न प्रकार ।

द्वय हों या फिर क्रम से चार ॥

‘संजस’, ‘कर्मण’ विग्रहगती ।

ओदारिक पुत आगे गती ॥

चार तभी हों सुनिए नेक ।

‘आहारक’, ‘वैक्रियिक’ में एक ॥

एक साथ नहि पंच शरीर ।

निषिधाद गुनिए घर धीर ॥४३॥

:— निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

१ :— प्रथम शरीर प्रथमहि उपभोग ।

अन्तिम द्वय में नाहि सुयोग ॥४४॥

:— गर्भ-सम्पूछनजमायम् ॥४५॥ ओपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

१ :— जन्मे गर्भ, सम्पूछन जोय ।

सो शरीर ओदारिक होय ॥४५॥

जो शरीर जन्मे ‘उपवाद’ ।

होय वैक्रियिक बिना अपवाद ॥४६॥

:— लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥ तैत्रसमपि ॥४८॥

१ :— तप से उपजे लब्धि विशेष ।

तासों भी वैक्रियिक अशेष ॥४७॥

लब्धि सहित संजस हूँ दोष ।

कांति प्रदायक सबमें होय ॥

दूजा तप विशेष से लहे ।

शुभ अरु अशुभ भेद दो कहे ॥४८॥



मूल :- परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥

भाषा :- ओदारिक तो है साकार ।

सूक्ष्म, सूक्ष्मतर क्रमशः धार ॥३७॥

मूल :- प्रदेशतोऽग्नयेयगुण प्राक् भजमान् ॥३८॥

भाषा :- अधिकाधिकय घनतय सु जानु ।

असंस्पृष्ट गुणे परमानु ॥

पहले से दूजे में कहे ।

दूजे से आहारक सहे ॥३८॥

मूल :- अनन्तगुणे परे ॥३९॥ अप्रतिपाते ॥४०॥

भाषा :- हैं अनन्तगुण तैजस माँहि ।

अन्तहु सो क्रम संशय नाँहि ॥३९॥

अप्रतिपाती अंतिम दोय ।

अग जग रोक सके ना कोय ॥४०॥

लौह पिंड में अग्नि समान । घुस सकते सर्वत्रहि जान ॥४०॥

तैजस और कार्मण शरीरों का आत्मा से संबंध :-

मूल :- अनादिसम्बन्धे च ॥४१॥

भाषा :- तैजस और कार्मण दोय ।

आत्म से सम्बंधित सोय ॥

आत्म साथ सदा सु अनादि ।

बंध निजैरा नय सों सादि ॥४१॥

तैजस कार्मण सब जीवों के होते है :-

मूल :- सर्वस्य ॥४२॥

भाषा :- तैजस कार्मण अंतिम दोय ।

सब संसारी जीवहि होय ॥४२॥

## तृतीय अध्याय

इस अध्याय में अथोलोक तथा मध्यलोक का वर्णन किया गया है ।

मूल :—रत्नशर्करावासुकापङ्क धूमतमोमहात्मः प्रभा भूमयो  
पनाम्बुवानाकाश प्रतिष्ठाः मज्जाधोऽध ॥१॥

भाषा :— अथोलोक का वर्णन मुनी ।  
सप्त भूमियाँ नीचे गुनी ॥  
'रत्न', 'शर्करा' पहली दोष ।  
अथ 'वासुका', 'पङ्क' चय होय ॥  
'धूम', 'तमः' आगे बिस्तार ।  
सप्तम 'महातमः' चित्तधार ॥  
नाम समान प्रभा सब रहें ।  
ताते रत्न-प्रभादिक कहें ॥  
'धूलय-धनोदधिवात' आधार ।  
सो 'धनवात-धूलय' आधार ॥  
यह 'तनुवात-धूलय' से घिरा ।  
अत अर्गताकाशहि निरा ॥१॥

१ से मूल वा बिस्तार :—

इस लक्ष असी योजन मान । रत्नप्रभा है मोटी जान ॥  
कम से कम है आठ हजार । 'महातमः' क्रमश चित्तधार ॥  
एक राजु नीचे लोकान । निश्चय जानें अव्य प्रगांत ॥  
मोटे योजन बीस हजार । तीनों वात-धूलय चित्तधार ॥  
मूँगा रंग धनोदधि जान । धनवातहि गो-मूत्र समान ॥  
वात-धूलय-तनु धूमि ज्यो । रंग अव्यवर्गहि तारा होय ॥

रत्नप्रभा आदि भूमियों में नरकों की संख्या :—

मूल :—ताम्र त्रिंशत्पद्मविंशतिपञ्चदशदशत्रि पञ्चोत्तरनरक—  
जनमहृन्वाणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२॥

भाषा — रत्न प्रभादिक में अथ कही ।  
नरकों की संख्या सुन सही ॥  
तीस, पचीस, पन्दरह जान ।  
दस पुनि तीन मुक्रमशः मान ॥  
गिनती सब साखों में कही ।  
पंच कम साख छठी में रही ॥  
सप्तम में बस केवल पंच ।  
नरक होहि नहि संशय रंच ॥२॥

नारकीयो का वर्णन :—

मूल .—नारवानित्यशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविज्रियाः॥

भाषा — देहादिक, लेश्या, परिणाम ।  
सबहि अशुभतर होते काम ॥  
वेदन और अशुभ विक्रिया ।  
नारक जीव महादुख जिया ॥३॥

मूल :—परस्परोदीरितदुःखाः ॥४॥

भाषा :— देहि परस्पर दुःख अपार ।  
आपस में ही विविध प्रकार ॥४॥

मूल :-मक्षिप्टामुरोदीरित दुःखाश्च प्राक् क्षतुर्व्याः ॥५॥

भाषा :- तिन्हें लड़ावें पुनि मुन लेव ।  
असुर कुमार कलह प्रिय देव ॥  
तीजी पृथ्वी तक सो आय ।  
दुख देने के करहि उपाय ॥५॥

नरको की आयु :-

मूल :-तेष्वेक त्रि मप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-  
त्रयास्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वाना परा स्थितिः ॥६॥

भाषा :- आयु नरक अब सुनिए सोय ।  
इक, त्रय, सात प्रथम त्रय होय ॥  
दस, सत्रह, बाइस कम जान ।  
तैंतिस सागर अंतिम मान ॥६॥

६ ठे मूल का विस्तार :-

अपिहाधिक सो आयु बताए । कम से कम कहते समझाए ॥  
दस हजार वर्षों की मान । रत्न प्रभा में हंती जान ॥  
अधिकाधिक पहने की ओय । आगे की कम से कम होय ॥  
मर्यादा आयु निपेक अपार । ज्यों सागर में जल विस्तार ॥  
ताते ही दीर्घायु बखान । करते सागर उपमा जान ॥६॥

मध्य गोरु का वर्णन —

मूल - जम्बू द्वीप-लवणोदधि नुमनामानो द्वीप समुद्रः॥७॥

भाषा — अद्य भविजन टुक धरतु दियेरु ।  
 द्वीप अनेक, समुद्र अनेक ॥  
 तिन सय ही के हैं नुम नाम ।  
 स्थित मध्यलोक सुखधाम ॥  
 जम्बू द्वीप प्रथम चित्तधार ।  
 नामहि जम्बू यक्ष आधार, ॥  
 लवणोदधि घेरे है उसे ।  
 ये ही क्रम आगे भी लते ॥७॥

द्वीप समुद्रो आदि का विस्तार :-

मूल - द्विद्विविष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वनयाकृतयः ॥८॥

भाषा — क्रम से द्वीप समुद्र विचार ।  
 दुगुन दुगुन जिनका विस्तार ॥  
 घेरे चूड़ी के आकार ।  
 जम्बू द्वीप मध्य चित्तधार ॥८॥

८ वे सूत्र का विस्तार :-

घेरे जम्बू द्वीप विचार । लवणोदधि जलराशि अपार ॥  
 लङ्घातकी पुनि विख्यात । कालोदधि है ता पश्चात ॥  
 जितने द्वीप समुद्रहि जान । आगे दोनो नाम समान ॥  
 अंतिम द्वीप समुद्रहि जोय । नाम 'स्वयम्भूरमणहि' सोय ॥  
 प्रथम द्वीप का जो विस्तार । ताते दूना उदधि विचार ॥  
 दूना द्वीप उदधि सो होय । ता के आगे स्थित जोय ॥८॥

द्वीप का कथन :-

—तन्मध्ये मेरुनामिर्वृत्तो योजन शतसहस्रविपरम्भो

जम्बूद्वीप ॥९॥

— गोचः सूर्यं सम जम्बू द्वीप ।

मध्य मेरु गिरि मनहु महीप ॥

जम्बू द्वीप भर्य आकार ।

एक लाख योजन विस्तार ॥६॥

द्वीप के गान क्षेत्र :-

—भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरष्यवनराशतयर्षा

क्षेत्राणि ॥१०॥

— सात क्षेत्र उसमें सुप्रचाम ।

‘भरत’, ‘हैमवत’ आदिक नाम ॥

‘हरि’, ‘विदेह’, ‘रम्यक’ है पंच ।

चित धरिए नहि संशय रच ॥

पट ‘हैरष्यवन’ हि है कहा ।

अथ ‘ऐरावत’ सप्तम रहा ॥१०॥

बै भूष का विस्तार :-

क्षेत्र उत्तर हिमवान । नवग मनुद्र दिशा त्रय जान ॥

सिन्धु नदी मनुद्राज । नामित, मरुतहि क्षेत्र भंशज ॥

विषयाधं मध्य गोमार । उत्तर-दक्षिण बनाय ॥

क्षेत्र पट भाग विशेष है ॥ प्रदेश ॥

करण का कारण भीत, वे तीन ॥

विषय, पक्षी की ॥ इन्हें मार ॥

निषध, नील पर्वत त्रिविध जान । क्षेत्र विदेह अस्थित मान ॥  
 कर्मनाश में सत्पर जान । मानव रहहि विदेह समान ॥  
 ताते क्षेत्र विदेह कहाए । मध्यभाग गिरि मेह गुहाए ॥  
 शत-सहस्र योजन विस्तार । ता में भूतल एक हजार ॥  
 मेह गिरी पर हैं वन चार । 'भद्रशाल', 'तन्दन' चिनघार ॥  
 'सीमनस' हि पुनि 'पांडुक' जान । मेह गिरि तर ता मध्य यतान ॥  
 चार शिला चव दिश मनुहार । तिन ऊपर सिंहासन चार ॥  
 तीर्थंकर अभिषेक कराए । देव मन हि मन में हर्षाए ॥  
 भविजन सो सक्षिप्त विचार । आगम में पढ़िए विस्तार ॥१०॥

जम्बू द्वीप के सात क्षेत्रों का वर्णन करने वाले छः पर्वत :-  
 मूल :-तद्विभाजिनः पूर्वपरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील-  
 हविम-शिखरिणो वर्षधरपर्वता. ॥११॥

भाषा:- सप्त विभाग सकल मुख साज ।  
 सीमांकन करते गिरिराज ॥  
 पूरब से पश्चिम तक जात ।  
 नाम 'वर्षधर' भी विख्यात ॥  
 पहला पर्वत है 'हिमवान' ।  
 दूजा सोइ 'महाहिमवान' ॥  
 'निषध' 'नील' 'रूपमी' पुनि कहा ।  
 'शिखरी' नाम छठे ने कहा ॥११॥

नदियों का वर्णन :—

मूत्र :—गङ्गा-सिन्धु-रोहिद्-रोहितास्या-हरिद्-हरिकान्ता-ओता-  
सीतोदा नारीनरकांता-शुक्ल-हृष्यकूला-रक्ता-रक्तोदा-  
मरितस्तम्भधराः ॥२०॥

भाषा :—सप्त क्षेत्र की नदियाँ मुनी ।  
गंगा-सिन्धु प्रथम की मुनी ॥  
दूजे की 'रोहित-रोहितास्य' ।  
'हरित' मु 'हरिकान्ता' पुनि तास्य ॥  
'सीता', 'सीतोदा' चय ग्रहे ।  
'नारी' 'नरकांता' पंच तहे  
'शुक्ल-हृष्यकूला' षट कही  
'रक्ता-रक्तोदा' सत वही



इन तालाबों का विस्तार :—

मूल :—प्रथमो योजन महाम्नायामस्तद्विष्णुम्भा हृदः ॥१५॥

भाषा:— तन्मार्द्ध हृद पञ्च विचार ।  
 पूरव परिचम एक हजार ॥  
 उत्तर वक्षिण चौड़ा जान ।  
 पंच शतक योजन परमान ॥

मूल :—दश योजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजन पुष्करम् ॥१७॥

भाषा:— दस योजन सो गहरा कहा ।  
 बीच कमल इक योजन सहा ॥१६ व १७॥

हृदो और कमलों का आकार :—

मूल :—तद्द्विगुण-द्विगुणा हृदा पुष्कराणि च ॥१८॥

भाषा:— कमल सरोवर आगे जोय ।  
 दुगुन दुगुन विस्तृत हैं सोय ॥१८॥

इन कमलों पर निवास करने वाली देवियाँ :—

मूल :—तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः  
 पत्न्यापमस्थितयः ससामानिकपरिपत्काः ॥१९॥

भाषा:— उन कमलों पर भव्य निवास ।  
 जिनमें छँ देविन के वास ॥  
 'श्री', 'ह्री', 'धृति' आदिक हैं नाम ।  
 'कीर्ति', 'बुद्धि', 'लक्ष्मी' मुखधाम ॥  
 एक पत्न्य की आपू लहें ।  
 सामानिक, परिपद् संग रहें ॥१९॥

मूल :- भरने रावतयोवूँ डिहासो पट् ममवाभ्यामुत्तपिण्यव-  
रुपिगोभ्याम् ॥२७॥

भाषा :- भरतहि, ऐरावतहि विचार ।  
आधु आदि घट थढ़ चितधार ॥  
उत् अद अवसरिणीनुसार ।  
छै ममर्थों में विविध प्रकार ॥२७॥

२७वें सूत्र की व्याख्या :-  
मुत्र घटता ही जाए विचार । बढना जाये दुःख अपार ॥  
अवसरिणी वाच्य सो जान । उरसरिणी बिलोमहि मान ॥  
'मुपमा-मुपमा' मुपमा' होय । 'मुपमा-दुपमा' तीया होय ॥  
'मुपमा-मुपमा' चौथा जान । 'दुपमा' पंचम भेद बरतान ॥  
'दुपमा-दुपमा' - अवसरिणी । इनके उल्टे उरसरिणी ॥  
इनमें मुत्र बढता ही जाए । जमनः सब दुःख जाए बिलाए  
॥२७॥

शेष दोशों की दशा :-

मूल :- ताम्पामपरा भूमयोऽवस्थिता ॥२८॥

भाषा :- छोड़ भरत, ऐरावत मही ।  
हानि वृद्धि नहि होती कहीं ॥  
एक समान दशा ही रहे ।

मूल :- चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता-गङ्गा सिन्धवादयो नद्यः ॥२३॥

भाषा :- गंगा-सिन्धु नदी परिवार ।

चौदह चौदह सोइ हजार ॥

दुगुन-दुगुन आगे क्रम जान ।

घेरे नदियाँ निश्चय मान ॥२३॥

भारत क्षेत्र का वर्णन :-

मूल :- भरतः पञ्चविंशति-पञ्चयोजन-शत-विस्तारः

पञ्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥

भाषा :- भरत क्षेत्र विस्तृत धर शीत ।

योजन पंच शतक द्वादशीत ॥

कर योजन के उन्नित भाग ।

योग करहु ता के छं भाग ॥२४॥

मूल :- तद्-द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥

भाषा :- वक्षिण पर्वत क्षेत्र विचार ।

क्रमशः दुगुन दुगुन विस्तार ॥

सो क्रम है विदेह पर्यन्त ।

संशय तनिक न भागें संत ॥२५॥

मूल :- उत्तर दक्षिणनुभ्याः ॥२६॥

भाषा :- उत्तर के गिरि क्षेत्र विचार ।

दक्षिण ही सम हैं विस्तार ॥२६॥

घातकी खड द्वीप की रचना :—

मूल :—विधातकीखण्डे ॥३३॥

भाषा :— क्षेत्र भरत आदिक हैं जोय ।

खंड-घातकी दो दो होय ॥३३॥

पुष्कर द्वीप का वर्णन :—

मूल :—पुष्करार्धे च ॥३४॥

भाषा :— दो दो पर्वत द्वीप विधार

आधे पुष्कर द्वीप मंतर

आधे पुष्कर द्वीप में ही भरत आदि क्षेत्र ब्यो

मूल :—प्राड् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥

भाषा :— कारण सो सुनिए धर ध्यान

मानुषोत्तर गिरि तक जान

मानव का ही है आवास

द्वीप-अढ़ाई करहि निवास

मनुष्यों के दो भेद :—

मूल :—आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥

भाषा :— मानव के दो भेद बताए

प्रथम आर्य पुनि म्लेच्छ कहा

भूमिगो वा यर्जन -

-भरती गगन-विदेहा. कर्मभूमिगोऽप्यत्र देवपुरस्सरकुर्यात् ॥३॥

॥ :— पंच भरत, ऐरायत पंच ।  
पंच विवेह न संशय रंच ॥  
पंद्रह कर्मभूमिगो कहीं ।  
छोड़ 'देव-उत्तरकुट' मही ॥३७॥

प्यो की आयु :-

:—नृस्थिती परावरे त्रिपत्योपमान्तमुं हर्ते ॥३८॥  
॥ :— मानव आयु कही सो मुनो ।  
उत्कृष्ट अरु जघन्यतम पुनो ॥  
तीन पत्य अधिकधिक जान ।  
अन्तमुं हर्तं न्यूनतम मान ॥३९॥

ऽचो की स्थिति :-

:—तिर्यग्योनिजानो च ॥४०॥  
॥ :— तिर्यङ्चो की स्थिति वही ।  
मानव की जो पहले कही ॥४१॥

(तीसरा अध्याय समाप्त)

प्रथमः—देवायतुणिजायाः ॥१॥

भाषाः— देवों के हैं चार निकाय ।  
प्रथम 'मवनवासी' बतलाय ॥  
'ध्यन्तर' पुनि 'ज्योतिष्क' गुहाय ।  
'धैमानिक' अंतिम कहलाय ॥१॥

मूलः—आदिनस्त्रिषु पीनाम्नसेषाः ॥२॥

भाषाः— आदि देव प्रथ, त्रेषा भीत ।  
पृष्ठ, नील, वायोतहि, पीत ॥२॥

चार प्रकार के देवों के अथान्न भेदः—

मूल—दशाष्ट-यज्य-डादण-विहत्याः कल्पोपपन्नान्ताः ॥३॥

भाषाः— देव 'मवनवासी' बस रहे ।  
आठ भेद 'अन्तर' के रहे ॥

देव 'ज्योतिषी' पाँच प्रकार ।

'धैमानिक' बारह धितपार ॥

अंतिम कल्पोपन्न पर्यन्त ।

मोलह

— ३ — अन्त ॥३॥

देवों के विषय में विशेष कथन :-

मूल - इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-परिषद्-आ  
लानीक-प्रकीर्णकाभिषोम्य-कित्विपिक

भाषा :- देवन भेद प्रत्येक निका  
निम्न प्रकार कहे समझाय  
'इन्द्र' श्रद्धि अणिमादिक यु  
'सामानिक' आदर संपुत्त  
'त्रायस्त्रिंश' प्रोहित सम जा  
'परिषद्' इन्द्र समासद मान  
'आत्मरक्ष' पंचम सुखदा  
रक्षा हेतु मनहु शोमा  
'लोकपाल' षट्, सप्त 'अनीव  
'प्रकीर्णक' पुरजन हि प्रतीक  
'आभिषोम्य' सेयक सम जा  
'कित्विपिक' हि चांडाल सम

ये मूल की व्याख्या :-

तैत्तिम प्रोहित सम बननाए । ता सो 'त्राय  
करे घनादिक रक्षा ओष । 'लोकपाल'

पूर्व कथन में अपवाद :-

मूल :- प्रायस्त्रिंश लोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्मन् ॥५॥

भाषा :- 'व्यन्तर', 'ज्योतिष्कहिं' नहि होय ।

लोकपाल, प्रायस्त्रिंश दोय ॥५॥

इन्द्र का नियम :-

मूल :- पूर्वयोर्द्विन्द्राः ॥६॥

भाषा :- प्रथम निफाय कहीं जो दोय ।

दो-दो इन्द्र दुहुन मा होय ॥६॥

धीस 'भवन-दासी' दो भये । सोलह इन्द्र सु 'व्यन्तर' लहे ॥६॥

देवों में कामेच्छा की पूति :-

मूल :- काय प्रविचारा आ ऐशानात् ॥७॥

भाषा :- काम-भाव 'प्रविचार' बखान ।

प्रथम तीन देयन में मान ॥

साय देव सौधर्मोशान ।

काय रमण भानव सम जान ॥७॥



मूल :—शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रविचाराः ॥८॥

भाषा :— क्रमशः सूक्ष्म लहें प्रविचार ।  
 शेष देव भी निम्न प्रकार ॥  
 स्पर्श, रूप, शब्दहि, मन, लाय ।  
 शांत कामना सब हो जाय ॥८॥

इस मूल की व्याख्या :—

स्वर्ग महेन्द्र हि सनतकुमार । आलिगन ही है प्रविचार ॥  
 ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, सातव मान । अह कापिष्ट स्वर्ग में जान ॥  
 प्रविचारहि का ढग अनूप । शांत काम हो लल कर रूप ॥  
 शुक्र, महामुनहि, सातार । चौथा स्वर्ग कहा महत्कार ॥  
 शांत कामना होती भीत । मुनकर मिष्ट वचन अह गीत ॥  
 आनत, प्राणत, आरण मान । चौथा अच्युत स्वर्ग बखान ॥  
 काम व्यथा सब ही मिट जाए । केवल मन में धितन साए ॥  
 परम तुष्टि सब ही की होय । देविन के मन भावे सोय ॥८॥

मूल :—परेऽप्रविचाराः ॥९॥

भाषा :— सोतह स्वर्गों से जो परे ।  
 काम तिन्हें नहि व्याकुलकरे ॥९॥

इस मूल की व्याख्या :—

नो ग्रंथेयक पढ़ने मान । पुनि नो अनुदिश आदिक जान ॥  
 पांच अनुत्तर में भी सोय । काम वेदना तनिक न होय ॥  
 देविन का है पूर्ण अभाव । यो नहि काम पूर्ण हो भाव ॥  
 काम अभावहि कारण जान । परम मुनी सो देव बखान ॥९॥

भवनवासी देशों के दस भेद :—

मूल :—भवनशामिनोऽमुर-नाग-विद्युत-गुणर्षाग्नि-  
वान-स्तनिभोऽधि-द्वीप-दिक्कुमारः ॥१०॥

भाषा :— भेद भवनवासी दस मान ।  
'अमुर', 'नाग' पुनि विद्युत जान ॥  
यद्य 'गुणर्ष', यद्य 'अग्निकुमार' ।  
'वात', 'स्तनित', 'उदधि' चित्तधार ॥  
'द्वीप' अथ दिक्कुमार दस कहें ।  
नाम कुमार सभी नै सहें ॥१०॥

१०वें मूल की व्याख्या :—

एक अवस्था में चित्तधार । रहहि देव आश्रम कुमार ॥  
देव भवनवासीन में मान । सो गुण अधिष्ठाधिक है जान ॥  
रहन-सहन में पूर्ण कुमार । सोऽह कुमार कहें चित्तधार ॥  
रत्नप्रभा पृथ्वी-मनुहार । पद्म यद्वन में अमुर कुमार ॥  
देवन के हैं भवन मनाम । नी के सर भागहि में धाम ॥  
भवनों में ही सो सब रहे । देव भवनवासी यों कहें ॥१०॥

व्यंतर देवों के आठ भेद :-

मूल -व्यन्तराः किन्नर-किम्पुदप-महोरग-गंधर्व-यक्ष  
राक्षस-भूत-पिशाचाः ॥११॥

भाषा :- व्यंतर रहहि विभिन्न स्थान ।  
आठ प्रकार सुनिश्चित जान ॥  
'किन्नर', 'किम्पुदप' हि हैं दोष ।  
और 'महोरग' तोजा होष ॥  
यव 'गंधर्व', 'यक्ष' ही पंच ।  
'राक्षस', 'भूत', 'पिशाच' हि भंच ॥११॥

११वें सूत्र का विस्तार :-

भूतल पर भी करहि निवास । ग्राम नगर चौराहा वास ॥  
मंदिर, उद्यानादिक मान । मे भी 'व्यन्तर' रहते जान ॥११॥

ज्योतिष्क देवों के भेद :-

मूल -ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तारकाश्च  
॥१२॥

भाषा :- 'ज्योतिष्क' हि के पांच प्रकार ।  
'नाम चमक कारण चित्तधार ॥  
'सूर्य' 'चन्द्रमा' 'ग्रह' 'नक्षत्र' ।  
पंचम 'तारे' हैं सर्वत्र ॥१२॥

१२वें सूत्र का विस्तार :—

भू मे तारे योजन मान । सात सनक और नम्ये जान ॥  
 सूर्य, चन्द्र, ग्रह आदिक जोय । ऊपर-ऊपर स्थित सोय ॥  
 एक सनक दस योजन मोहि । देव ज्योतिषी मलय मोहि ॥  
 पात-वलय-पनउदधि मेसार । तऊ सो कैये हूँ धन्यवार ॥  
 सूर्य चन्द्र ही इन्द्र समान । ज्योतिष्क हि देवों मे जान ॥१२॥

सूत्र :—मेरुप्रदक्षिणा नित्यमत्रयी नृलोके ॥१३॥

भाषा :— नित प्रदक्षिणा मेरुहि करें ।  
 दाईं डीप का सामस हरे ॥१३॥

१३वें सूत्र की व्याख्या :—

दाईं डीप अरु सागर दीप । मानव लोक यहीं तरु होय ॥  
 ता के देव ज्योतिषी जान । मेरु प्रदक्षिण दें नित मान ॥  
 ग्यारह सौ योजन रह दूर । दें प्रजाप मानव भरपूर ॥१३॥

सूत्र :—तत्पुनः काल विभागः ॥१४॥

भाषा :— ज्योतिष-देवन-गति आधार ।  
 काल विभाग किए व्यवहार ॥१४॥

१४वें सूत्र की व्याख्या :—

पटा, मिनट, घड़ी, दिन, रात । व्यवहारहिँ सो काल कहात ॥  
 बोध ताहिँ सौ निश्चय काल । ता मुनिप्रा आये हाल ॥१४॥

मूल :—बहिरवस्थिताः ॥१५॥

भाषा :— मानव लोक परे गतिहीन ।

नाम 'अवस्थित' ताते दीन ॥१५॥

वैमानिक देवों का वर्णन :—

मूल :—वैमानिकाः ॥१६॥

कल्पोपमाः कल्पातीताश्च ॥१७॥

भाषा :— देव भेद वैमानिक भीत ।

'कल्पोपमा' अथ 'कल्पातीत' ॥१६ व १७॥

१६वें तथा १७वें सूत्र की व्याख्या :—

पुण्यवान् जेह जीवहि जान । कहलावे सो जगह विमान ॥

जन्म तही जो लेये विचार । वैमानिक सो ही चित्तधार ॥

जिनमें रहना पुण्य कहाय । सो विमान त्रय भेद बताए ॥

मध्य इन्द्र सम 'इन्द्रक' जान । श्रेणिग्रद्ध चहुँ 'श्रेणि' विमान ॥

विदिशाओं में पुण्य समाग । 'पुण्यप्रकीर्णक' बितारे यान ॥

दस प्रकार इन्द्रादिक जोय । 'कल्पोपमा' कहावें सोय ॥

सोतह स्वर्ग परे सुन लेव । सब 'अहमिन्द्र' कहावें देव

॥१६ व १७॥

मूल :—उपगुं परि ॥१८॥

भाषा :— कल्प कहो या सोतह स्वर्ग ।

स्थित हैं क्रमशः अपवर्ग ॥१८॥

सोलह स्वर्गों का वर्णन :-

भूत :- सौधमंशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मात्तर - सान्तव  
कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत - प्राणतयो-  
रारणाच्युतयानं वसु ग्रंथेयकेषु विजय-वैजयन्त-जयन्तः  
पराजितेषु सर्वार्यसिद्धौ च ॥११॥

भाषा :- सोलह स्वर्ग-प्रथम 'सौधमं' ।  
पुनि 'ऐशानं' गुनहु चित्त ममं ॥  
'सानत्कुमार' 'माहेन्द्र' बताए ।  
'ब्रह्म' सु 'ब्रह्मात्तर' सुखदाए ॥  
सप्त 'सान्तव', अष्ट 'कापिष्ठ' ।  
'शुक्र' 'महाशुक्र' हि हैं इष्ट ॥  
पुनि 'शतार' द्वारस 'सहस्रार' ।  
'आनत', 'प्राणत' आदि विचार ॥  
'आरण', 'अच्युत' अंतिम मान ।  
कम से सोलह स्वर्ग सु जान ॥  
ता पर नो ग्रंथेयक कहें ।  
नो अनुदिश आदिक भी रहें ॥  
रहें 'विजय' 'वैजयन्त' 'जयन्त' ।  
'अपराजित' चव मानें संत ॥  
पुनि 'सर्वार्यसिद्धि' ही मान ।  
पच विमान अनुत्तर जान ॥  
धर्मानिक तहें करहि निवास ।  
भांति-भांति सुख बिना प्रयास ॥१२॥

२२वें सूत्र की व्याख्या :—

तीव्र वैर, श्रोधादिक, बलेश । लेश्या कृष्ण त संशय लेश ॥  
 माया, तृष्णादिक, अतिमान । नीलहि लेश्या की पहिचान ॥  
 आत्म-प्रशंसादिक ही भाए । सो कपीत लेश्या कहलाए ॥  
 दया, दान, सत्यादिक मीत । लक्षण हैं सो लेश्या पीत ॥  
 क्षमा, दयादिक, सात्विक दान । पद्महि लेश्या लक्षण जान ॥  
 धीतराम, पर दोष भुलाए । शुक्लहि लेश्या सो कहलाए ॥  
 नाम कर्म वश रंग शरीर । द्रव्यहि लेश्या सो गुणधीर ॥  
 हों कपाय वश मन-वच-काय । भाव हि लेश्या सो कहलाए ॥२२॥

कल्प किसे कहते हैं :—

मूल :—प्राग्भवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥

भाषा :— स्वर्गादिक प्रयेयक पूर्व ।

इन्द्र सहित सो 'कल्प' अपूर्व ॥२३॥

२३वें सूत्र का विस्तार :—

प्रथमहि से सोलह तक जान । स्वर्गों में ही इन्द्र बसतान ॥  
 भवेयक, अनुदिश पुनि जाय । ओर अनुसर इन्द्र न होय ॥  
 सोलह स्वर्ग परे बनलाए । सबहि देव 'अहमिन्द्र' कहाए ॥२३॥

सौकान्तिक देवों का वर्णन :-

मूल :- ब्रह्मलोकानया सौकान्तिकाः ॥२४॥

भाषा :- ब्रह्मलोक में रहते मान ।

सौकान्तिक सो निश्चय जान ॥

एक जन्म से मुक्तो लहें ।

साते ही सौकान्तिक कहें ॥२४॥

सौकान्तिक देवों के भेद :-

मूल :- सारस्वतादित्य-बहुयश्म-गर्दतोय-सुषिता व्यापाधा-

रिष्टाम्न ॥२५॥

भाषा :- सौकान्तिक के सुनिष्ट भेद ।

ऊँच-नीच का नाहि विभेद ॥

‘सारस्वत’, ‘आदित्य’ विचार ।

‘बह्नि’ ‘अरुण’ क्रमशः चित्तधार ॥

‘गर्दतोय’ पुनि ‘सुषित’ कहाय ।

‘अव्याबाध’, ‘अरिष्ट’ सुहाय ॥२५॥

२५वें मूल की व्याख्या :-

इन्द्रादिक के नाहि अधीन । विषय विरक्त देव स्वाधीन ॥

सा सों ये देवहि कहाएँ । पाठी चोदह पूर्व बताएँ ॥

सो वैराग्य समय सुखदाय । तीर्थंकर प्रतिबोधहि जाय ॥

अधिकाधिक सत्या में मान । दो-दो क्रमशः जदवि समान ॥

सात-सात सौ प्रथम सहत । ग्यारह सहस्रहि-ग्यारह अंत ॥२५॥



द्वि चर्म देवो का वर्णन :-

मूल :- विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥

भाषा :- नौ अनुविश, विजयादिक चार ।

ता के देव 'द्वि.चर्म' विचार ॥२६॥

२६वे सूत्र की व्याख्या :-

विजयादिक से भूतल आए । पुनि समय घर ऊपर जाए ॥  
पुन. वहाँ से नर भव धरे । मुक्ति रमा को तब जा वरे ॥  
दो मानव भव धरते मान । मोक्ष प्राप्त करते तब जान ॥  
पर सर्वायं सिद्धि के देव । एक चरम होते चित्त सब ॥२६॥

तिर्यञ्चों की पहिचान :-

मूल :- औपपादिक-शुभेभ्य शेपास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥

भाषा :- जन्मुपपाद नारकी, देव ।

अब मानव तजि शेपहि लेव ॥

जीव सोइ तिर्यञ्च हि मान ।

सब लोपों में स्थित जान ॥२७॥

देवों की आयु का वर्णन :-

मूल :- स्थितिरगुरनाग-गुपणं-द्वीप-शेपाणा सागरोपम  
त्रिपत्योपमादंहीनमिता ॥२८॥

भाषा :- आयु भवनवासिन की कहती ।

अमुरकुमारिक सागर सहो ॥

नाग कुमारों की त्रय पत्य ।

और गुपणं अढ़ाई पत्य ॥

आयु पत्य दो द्वीप कुमार ।

बेढ़ पत्य तक शेव विचार ॥२८॥

गोचर्ये श्रीः ऐश्वर्यं त्वत्तु के देवो की आयुः—

मृतः—गोचर्ये त्वत्तु के देवो की आयुः ॥२९॥

भावाः— आयु रत्नं गोचर्ये त्वत्तु ॥

कुम्भं बहु हो सागर परमान ॥२९॥

वसाः— आयु के रत्न की आयुः—

मृतः—गोचर्ये त्वत्तु के देवो की आयुः ॥३०॥

भावाः— आयु रत्नं गोचर्ये त्वत्तु ॥

तन्मिह अर्धं मत्त सागर मान ॥३०॥

मृतः—गोचर्ये त्वत्तु के देवो की आयुः—

मिथ्यानि तु ॥३१॥

भावाः— आयु रत्नं गोचर्ये त्वत्तु ॥

ह्यस्त रत्नं शेष वित्तपार ॥

सोन, सात, मी, ग्याह नाम ॥

तेरह, पन्ध्रह आयु मान ॥३१॥

१११ मृत की आयुः—

दो-दो रत्नो में की होय । रत्न, सोरह, सोनह बहि होय ॥

अष्टादह नाम वृत्ति करो । मृत ही में रत्नो ॥

अर्धं भाव आयु । मृत ही मान ॥

### बलुणा रीत देवों की मायु :-

मूल — आरणाव्युतादूर्ध्वमकैकेन नक्षु श्रेष्ठयेगु विजयागिणु  
सर्वार्यसिद्धी ध ॥३२॥

साधना :- नी संवेयक आयु प्रसिद्ध ।

एक-एक सागर क्रम यदि ॥

भारण, अक्षय्यत से ही कहो ।

तेइस से इकतिग तक रही ॥

इहं यद् हि अनुविशति विमानम् ।

बसिम सागर सो ही जान ॥

विजयादिक चय में एक यदि ।

तेनिम ही 'सर्वार्थं हि सिद्धि' ॥३२॥

### सामानिक देशों की जलन्य आतु :-

मृत - धराग सन्ध्यासमयविरम् ॥३३॥

भावाः— आयु जघन्य ह्यनं हो जान ।

बुद्ध बद्ध एक पण्य ते मान ॥३३॥

मन्त्रः—ॐ नमः शिवाय नमः शिवाय नमः शिवाय ॥३॥

ब-त :- सीले की अपेक्षाधिक शोध ।

ता ऊपर कम से कम होय ॥३८॥

१. ये मूख बोलें अन्वयदा :-

सूत्र ३३ :- सप्तमं चतुर्विधं । अविद्याविज्ञानं भवेत्तु ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

कृष्ण होकर मरण ॥३॥



द्रव्यों के बारे में विशेष कथन :—

मूल :—नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

भाषा :— 'नित्य' 'अवस्थित' सब ही मान ।

पुद्गल छोड़ अरूपी जान ॥४॥

दो प्रकार गुण सब में मान्य । प्रथम विशेष पुनः सामान्य  
गुण विशेष गति होय सहाय । अस्तित्व हि सामान्य बताय  
धर्म द्रव्य गुण से चित्तधार । दो-दो सबमें इसी प्रकार  
द्रव्य गुणों का नाश न होय । ता से 'नित्य' कहावें सोय  
छे सत्या नहि पट-बट जान । द्रव्य 'अवस्थित' से ही मान  
पुद्गल रूपी, है गुण चार । अन्य अरूपी सब चित्तधार ॥४॥  
पुद्गल द्रव्य रूपी हैं :—

मूल :—रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

भाषा :— केवल पुद्गल रूपी कहें ।

रस-स्पर्श गंधादिक सहे ॥५॥

धर्मादि द्रव्य बटन नहीं हैं —

मूल :—आ आकाशादेवद्रव्याणि ॥६॥

भाषा :— 'धर्म', 'अधर्म', 'अकारण' हि एक ।

तीन द्रव्य जो शेष—अनेक ॥६॥

पुद्गल, जीव अनन्तानन्त । अगम्यान अणु काल सहज  
गोसाकाश असंख्य प्रदेश । हर पर विन काताणू एक ॥६॥

मूल :—निर्निशाणि च ॥७॥

भाषा :— 'धर्म', 'अधर्म' 'अकारण' हि तीन ।

हवन घटन विन क्रिया विहीन ॥७॥

बन्ध भेद भी गुनि, दोर । 'वेगनिह' हि मायोगिक होय ॥  
 विनाय कलमिह के रहनेदेह । बादल, विदुष प्रपमहि मेव ॥  
 पुष्प दल 'मायोगिक' मान । गा के गुनि हो भेद बगान ॥  
 बंध अशोक-अशोक हि दूख । काट-काट मित्र बंध भवेक ॥  
 जीव-प्रतीति दूखा ज्ञान । ज्ञान्य कर्म के बंध गुमान ॥  
 रघुन गुमान दोहि विचार । लहने अपिह प्रथम विपत्ता ॥  
 दूखा ज्ञानेपिह कहनाए । डेर डेर से दूख बगाए ॥  
 'गमयान' अक्षय भावार । गो भी होना दोहि प्रकार ॥  
 'दण्ड लक्षण' पढ़ना ज्ञान । लम्बा, चौड़ा आदि बगान ॥  
 कल बहमन रहे अक्षय । मोड़ 'अनिर्ग' लक्षण' तप्य ॥  
 लह गुदगद हि 'भेद' बगान । काट बुगल 'उपर' ज्ञान ॥  
 आश आदिह 'बुद्ध' कहाए । पट के दूर से 'गड' बगाए ॥  
 दान-चोह 'बुद्धि' विचार । 'प्रवर' मेव पटमहि विपत्ता ॥  
 लोह-गुनिह 'अनु-चटन' कहाए । मों दूर से पट भेद बगाए ॥  
 अक्षय ही 'दण्ड' कहाए । 'दामा' के हो भेद बगाए ॥  
 जग की लल रंग में होय । पूर आदि गो गंगा होय ॥  
 गुन प्रकाश हि 'आश' होय । जीवन बंध प्रमाण 'उद्योग' ॥२४॥  
 पुद्गल के भेद :—

गुन :—अक्षयः स्वस्थान ॥२५॥

भाषा :— पुद्गल के दो भेद बताए ।

'परमाणु', 'स्वस्थ' कहाए ॥

अणु अविभागी एक प्रदेश ।

एकाधिक 'स्वस्थ' विशेष ॥२५॥

खट्टा, मोठा, कटुवा जान । तीता और वसैला मान ॥  
 रसहि पच सो, दो हैं गंध । नाम सुगंध और दुर्गंध ॥  
 काला, नीला, लाल, सफेद । पंचम पीत वर्ण के भेद ॥  
 मूल वर्ण सो केवल पच । बहु प्रभेद नहि सशय रंच ॥२३॥

पुद्गल द्रव्य की मुख्य १० पर्याय :—

मूल .—शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपो-  
 चोत्पन्नश्च ॥२४॥

भाषा :— सज्जन वृन्द सुनहु अब नेक ।  
 पुद्गल की पर्याय अनेक ॥  
 'शब्द' 'बन्ध' 'सौक्ष्म्य' बताए ।  
 पुनि—'स्थौल्य' 'संस्थान' कहाए ॥  
 'भेद' और 'तम' 'छाया' मान ।  
 'आतप' अरु 'उद्योतहि' जान ॥२४॥

२४वें सूत्र की व्याख्या :—

शब्द भेद दो होहि अनूप । भाषा और अभाषा रूप ॥  
 भाषा पुनि दो रूप बस्तान । अक्षर और अनक्षर जानें ॥  
 मानव सब करते व्यवहार । भाषा अक्षर रूप विचार ॥  
 पशु पक्षि की बोली जोय । भाषा, अनू-अक्षर है सोय ॥  
 रूप अभाषा शब्दद्वै दोय । पुरुष प्रत्य 'प्रायोगिक' होय ॥  
 मेष-गर्जना आदिक जान । 'स्वाभाविक' नैसर्गिक मान ॥  
 प्रायोगिक पुनि चार प्रकार । वाय चाम के 'तत' चित्तधार ॥  
 तार आदि के आजे जोय । 'वितत' नाम ही तिनका होय ॥  
 घटा आदिक 'घन' कहसाए । वशी आदि 'गुप्तिर' मन भाए ॥

बन्ध भेद ही भूमि, होय । 'वैमर्षिक' हि आर्षोदित होय ॥  
 विनाय कर्मादिन हे भवभेद । बाह्य, विदुष प्रथमहि लेह ॥  
 पुनश्च दान 'आर्षोदित' होय । सा के पुन ही भेद दत्ताय ॥  
 भव भेदोदितोदित हि दत्त । बाह्य भव भिन्न बन्ध भेद ॥  
 भिन्न बन्धोदित पुन आर । बाह्य बन्ध के बन्ध दत्ताय ॥  
 दत्त पुन भवभेदोदित विनाय । भवभेद भविष्य भवभेद विनाय ॥  
 पुनः कर्मादिन कर्मादिन । हेतु हेतु के दत्त दत्ताय ॥  
 'महाभय' भवभेद आर्षोदित । सो भी भवभेदोदित दत्ताय ॥  
 'दत्त' भवभेद दत्ताय दत्त । भवभेद, भवभेद भवभेद दत्ताय ॥  
 भव भवभेद भव भवभेद । भवभेद 'महाभय' दत्ताय ॥  
 भव भवभेद हि भवभेद दत्ताय । बाह्य भवभेद 'महाभय' दत्ताय ॥  
 'महाभय' भवभेद 'महाभय' दत्ताय । भवभेद भवभेद 'महाभय' दत्ताय ॥  
 भवभेद 'महाभय' दत्ताय । 'महाभय' भवभेद भवभेद विनाय ॥  
 दत्त भवभेद 'महाभय' दत्ताय । सो दत्त भवभेद भवभेद दत्ताय ॥  
 भवभेद ही भवभेद दत्ताय । 'महाभय' के सो भवभेद दत्ताय ॥  
 दत्त भवभेद भवभेद भवभेद । भवभेद भवभेद भवभेद दत्ताय ॥  
 दत्त भवभेद 'महाभय' दत्ताय । भवभेद भवभेद भवभेद दत्ताय ॥  
 भवभेद भवभेद —

दत्त—भवभेद, भवभेद ॥२२॥

दत्त— पुनः भवभेद के सो भवभेद दत्ताय ।

'महाभय', 'महाभय' दत्ताय ॥

भवभेद भवभेद भवभेद भवभेद ।

भवभेद भवभेद भवभेद भवभेद ॥२३॥



खट्टा, मोठा, कटुवा जान । तीता और कसैला मान ॥  
 रसहि पंच सो, दो हैं गंध । नाम सुगंध और दुर्गंध ॥  
 काला, नीला, लाल, सफेद । पंचम पीत वर्ण के भेद ॥  
 मूल वर्ण सो केवल पंच । बहुप्रभेद नहि संशय रच ॥२३॥

पुद्गल द्रव्य की मुख्य १० पर्याय :—

मूल :—शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थूल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपो-  
 द्योतवन्तश्च ॥२४॥

भाषा :— सज्जन युन्द सुनहु अब नेक ।  
 पुद्गल की पर्याय अनेक ॥  
 'शब्द' 'बन्ध' 'सौक्ष्म्य' बताए ।  
 पुनि—'स्थूल्य' 'संस्थान' कहाए ॥  
 'भेद' और 'तम' 'छाया' मान ।  
 'आतप' अरु 'उद्योतहि' जान ॥२४॥

२४वें सूत्र की व्याख्या :—

शब्द भेद दो होहि अनूप । भाषा और अभाषा रूप ॥  
 भाषा पुनि दो रूप बखान । अक्षर और अनक्षर जानें ॥  
 मानव सब करते व्यवहार । भाषा अक्षर रूप विचार ॥  
 पशु-पक्षि की बोली जोय । भाषा, अन्-अक्षर है सोय ॥  
 रूप अभाषा शब्दहुँ दोय । पुरुष यत्न 'प्रायोगिक' होय ॥  
 मेष-गर्जना आदिक जान । 'स्वाभाविक' नैसर्गिक मान ॥  
 प्रायोगिक पुनि चार प्रकार । वाद्य धाम के 'तत' चितधार ॥  
 तार आदि के शब्दे जोय । 'वितत' नाम ही तिनका होय ॥  
 घटा आदिक 'घन' कहसाए । यही आदि 'गुप्तिर' मन भाए ॥

बल भेद भी सुनिश्च होय । 'वैमर्दिह' हि प्रयोगिक होय ॥  
 विषय कल्पित के प्रयोगेय । बाह्य, विदुष प्रथमहि मेव ॥  
 पुनरप्य 'प्रयोगिक' मान । ता के पुनर दो भेद बखान ॥  
 अथ प्रयोग-प्रयोग द्विष्ट ॥ बाह्य मान मिल अथ भेद ॥  
 प्रयोग-प्रयोगहि दूधा प्रत्य । अथ अर्थ के अथ प्रमाण ॥  
 प्रमाण प्रमाण दोहि विचार । अर्थके अर्थके प्रमाण विचार ॥  
 दूधा प्रयोगिक बखान । अर्थ के अर्थ के प्रमाण ॥  
 'प्रमाण' अर्थके प्रमाण । प्रमाण प्रमाण दोहि प्रमाण ॥  
 'प्रमाण' अर्थके प्रमाण । प्रमाण, प्रमाण प्रमाण ॥  
 अथ प्रमाण प्रमाण । प्रमाण 'प्रमाण' प्रमाण ॥  
 अथ प्रमाण हि 'प्रमाण' प्रमाण । प्रमाण प्रमाण 'प्रमाण' प्रमाण ॥  
 'प्रमाण' प्रमाण 'प्रमाण' बखान । प्रमाण के प्रमाण 'प्रमाण' प्रमाण ॥  
 प्रमाण 'प्रमाण' विचार । 'प्रमाण' प्रमाण प्रमाण विचार ॥  
 प्रमाण 'प्रमाण' बखान । प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण ॥  
 प्रमाण प्रमाण 'प्रमाण' बखान । 'प्रमाण' के प्रमाण प्रमाण ॥  
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण । प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण ॥  
 प्रमाण प्रमाण 'प्रमाण' प्रमाण । प्रमाण प्रमाण 'प्रमाण' प्रमाण ॥  
 प्रमाण प्रमाण 'प्रमाण' प्रमाण । प्रमाण प्रमाण 'प्रमाण' प्रमाण ॥

प्रमाण के भेद :—

प्रमाण :—प्रमाण : प्रमाण ॥२३॥

प्रमाण :— प्रमाण के दो भेद बखान ।

'प्रमाण', 'प्रमाण' बखान ॥

अथ प्रमाण प्रमाण एक प्रमाण ।

प्रमाण प्रमाण 'प्रमाण' प्रमाण ॥२४॥

२२२वें सूत्र की व्याख्या —

पक्षो यजितः गुण विनयात् । मयः, वर्णः, रस एक प्रकार ॥  
 क्षीर-तृण मे एक यत्नान् । मित्रम् ऋक्ष मे भी इक जान ॥  
 दो वर्ण अणु प्रत्येक । मर्षाद् रस-रूप अनेक ॥२२॥  
 मय्यों की उत्पत्ति कैसे होती है —

मूल — भेद मयानेक्य उत्पद्यन्ते ॥२३॥

भाषा :— स्कन्धों का कारण मान ।

‘भेद’ और ‘संघात’ यत्नान् ॥२३॥

२२३वें सूत्र की व्याख्या —

स्कन्ध टूटना भेद’ यत्नान् । मयः अणु मयान् ब्रह्मात् ॥  
 मयः अणु का जितने होय । स्कन्ध प्रदेही उत्तरे गांय ॥२३॥  
 अणु घटने का कारण —

मूल — भेदादणु ॥२३॥

भाषा :— अणु घटने में कारण मान ।

स्कन्धों का भेद यत्नान् ॥२३॥

स्कन्ध का कारण भेद मयात क्यों कहा :—

मूल :— भेद मयानाम्या चाणुयः ॥२४॥

भाषा :— कारण भेद संघात यत्नान् ।

आँखों से स्कन्ध दिखाए ॥२४॥

द्रव्य तथा सत का लक्षण .—

मूल :— सद् द्रव्यलक्षणम् ॥२५॥

उत्पाद-व्यय-धोव्ययुक्तं सत् ॥३०॥

भाषा :— द्रव्यहि लक्षणं सुन चित लाए ।

सत है जो सो द्रव्य कहाए ॥२५॥

सत कहिए ‘उत्पाद’ हि युक्त ।

हो ‘व्यय’ और ‘धोव्य’ संयुक्त ॥३०॥

३०वें सूत्र की व्याख्या :—

नव पर्याय नाम 'उत्पाद' । ता का साथ 'व्यय' बिना विवाद ॥  
 निज स्वभाव नहि छोड़े सोय । पर्यायें रितनी भी होय ॥  
 अस्तु 'घोष्य' गुण सो ही मान । अथ गुण सो सब द्रव्यहि जान ॥  
 जैसे घट मिट्टी पर्याय । टूटे मिट्टी नहि बिनगाय ॥  
 एक साथ ही तानो धर्म । द्रव्यों में परिवर्तन धर्म ॥  
 गन का नहि सर्वथा बिनाश । असन न डरने लाग प्रयास ॥  
 निज स्वभाव नहि छोड़े कोय । जड़ बेतन पुा क्यहुँ न होय ॥३०॥  
 नित्य का स्वरूप :—

मूल :—तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥

भाषा :— यस्तु स्वभाव कहा 'तद्भाव' ।

कुछ अविनश्यर 'नित्य' यथाय ॥

तासों पुनि द्रव्यन पहिचान ।

नित्य-अनित्य दोऊ हैं जान् ॥३१॥

३१वें सूत्र की व्याख्या :—

घट कूटा-पर्याय अनित्य । मिट्टी दोष अपेक्षा नित्य ॥  
 नित्य-अपेक्षा है सामान्य । पर पर्याय अनित्य बतान ॥  
 एक व्यति सम्बन्ध अनेक । भिन्न अपेक्षा ही प्रत्येक ॥३१॥

यस्तु के मुख्य और गौण धर्म :—

मूल :—अपित्तानपित्तसिद्धेः ॥३२॥

भाषा :— मुख्य धर्म को 'अपित्त' कहा ।

गौण हि धर्म 'अनपित्त' रहा ॥

दोनों से मिल कर हो सिद्ध ।

यस्तु कई गुण युक्त प्रसिद्ध ॥३२॥



मूल :- बन्धेनविही पारिणामिनी ॥३७॥

भाषा :- अधिष्ठ गुणों से जो हो युक्त ।

सो कर से निज में संयुक्त ॥३७॥

३७वें मूल की व्याख्या :-

दुर्ध्व अवाया तत्र कर मान । अथ अवस्था तीक्ष्णो ज्ञान ॥  
ता से रहे न विपिन में । जो पट धागे वटाव मचेद ॥  
जो गुण से गुण अधिष्ठान । कम मुख जाना जगु शिखान ॥  
नाहि अवस्था तीक्ष्णो गोप । ता से वह स्वयं न होय ॥३७॥

द्रव्य का अन्ध प्रचार से मलान :-

मूल :- गुणार्थादिव द्रव्यम् ॥३८॥

भाषा :- जो में होवें गुण पर्याय ।

यस्तु 'द्रव्य' सो ही बहताय ॥३८॥

३८वें मूल की व्याख्या :-

साहे जिहनी हों पर्याय । द्रव्य माय गुं गुण बहताय ॥  
एव आदि पुद्गल के जान । ओर जीव का गुण है जान ॥  
गुण प्रवचना वास्तु बहताय । द्रव्य उन्माद कही पर्याय ॥  
द्रव्य तथा गुण अथ पर्याय । जूदे न, सो 'गुण' द्रव्य बहताय ॥  
गुण तादृश 'अन्यधी' द्रव्यान । 'अनिरेकी' पर्याय बहताय ॥३८॥

बाल द्रव्य का बचन :-

मूल :- बालवत् ॥३९॥

भाषा :- बाल द्रव्य है रूप विहीन ।

अतस्त्मात्, निष्क्रिय, गतिहीन ॥३९॥

गंध रसादि न ही है हीन । बाल अमूर्ति रूप विहीन ॥

दर्शन जान रहित है सोय । ता से बाल अचेतन होय ॥

सोतातान अन्त प्रदेश । हर घर हे बाबाणू एत ॥  
 रत्न राजि सम गो बाबाणू । रहें सिंग ताते नदि काय ॥  
 भाग-अनग सिंग, नदि एक । काण द्रव्य कहनाएँ अनेक ॥  
 जिनने सोतातान प्रदेश । उनने काय न मसय तेज ॥  
 एत प्रदेश न दूजे जाएँ । सम सिंग, निधिय कहलाएँ ॥३९॥  
 व्यवहार काल का प्रमाण :-

मूल :- सोतातानगमय ॥४०॥

भाषा :- सो अनन्त समयों से युक्त ।  
 भूत भविष्यत नाम प्रयुक्त ॥  
 यत्तमान है 'समय' प्रमान ।  
 भूत भविष्य अन्तहि जान ॥४०॥

काल अश मुनिए चिन्ताय । सबने छोटा 'समय' कहाय ॥  
 समय-समूह काल-व्यवहार । घटा, मिनट आदि चिन्तार ॥४०॥  
 गुण का लक्षण :-

मूल :- द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा ॥४१॥

भाषा :- द्रव्याश्रय से ही जो रहें ।  
 यों निर्गुण, तिनको गुण कहें ॥४१॥

परिणाम का लक्षण :-

मूल :- तद्भावः परिणामः ॥४२॥

भाषा :- निज स्वभाव तद्भाव बताए ।  
 सो ही पुनि परिणाम कहाए ॥४२॥  
 धर्म द्रव्य मति होय सहाय । तद्भावहि परिणाम कहाय ॥४२॥  
 (पाँचवाँ अध्याय समाप्त)

## द्वितीय अध्याय

इत अर्थात् मे आस्य तत्र वा वचन है ।

मूल :- वाय-वाहूयनः कर्मयोगः ॥१॥

भाषा :- वाय, वचन अथ मन की दिया ।

‘योग’ नाम ता हो की दिया ॥१॥

इति मूल की व्याख्या :-

आत्म प्रवेशहि हृत्-वचन होय । आत्म ‘योग’ कहावे सोय ॥

भेद निमित्तहि वच विचार । वाय, वचन, मन योग विचार ॥

हो वाचन प्रवेश कहाय । ‘अन्तरंग’ अथ आत्म कहाय ॥

प्रथम-कर्म-भाव-उपगम आत्म । वाचन बाह्य कर्म-जो जाय ॥

गुरुस्थान तेरह तत्र सोय । योगाभाव जोरहवे होय ॥१॥

यह योग ही आत्मक है :-

मूल :- स आत्मकः ॥२॥

भाषा :- आत्म प्रवेशहि हृत्-वचन योग ।

आत्मक हेतु कहें तब योग ॥२॥

इति मूल की व्याख्या :-

पुण्य पाप दो कर्म प्रचार । आत्मक हेतु योग है द्वार ॥

मम पद धूमि आदि ज्यों गहे । कर्म-योग-रत्न र्यों महे ॥

आत्म वपापहि नम जय होय । योग कहावे आत्मक सोय ॥

तत्त्व तोह ज्यों जस सोनाय । अणुद्वारम र्यों कर्म बंधाय ॥२॥



अधिकरण के भेद —

मूल — अधिकरण जीवाजीवा ॥७॥

भाषा:— अधिकरण हि आत्म्य आधार ।

जीव-अजीवहि विविध प्रकार ॥७॥

जीवाधिकरण के भेद—

मूल:—आद्य शरम्भ-समारम्भारम्भ-योग-कृत-कारितानुमत  
कपाय-विभेगेस्त्रिभिस्त्रिचतुश्चैतज ॥८॥

भाषा:— यथा प्रमाद 'सम्भ्रम्भ' नवीन ।

'समारम्भ', 'आरम्भ' सु तीन ॥

तीन भेद पुनि मन-बच-काय ।

कृत-कारित-अनुमोदन भाव ॥

क्रोध-मान-माया अह लोभ ।

इन सबसे उपजे विक्षोभ ॥

सो जीवाधिकरण के भेद ।

गुणन किए शत-आठ प्रभेद ॥८॥

८ वें सूत्र की व्याख्या:—

कर्मात्म्य शत-आठ प्रकार । क्षरण हेतु मातां विस्तार ॥  
निश्चय ही 'सम्भ्रम्भ' कहाय । 'समारम्भ' साधन हि जुटाय ॥  
कार्यारम्भ 'आरम्भ' हि मान । भावहि साधन तीनों जान ॥  
स्वयं करे सो 'कृत' कहलाए । 'कारित' दूजे से करवाए ॥  
कार्य सराहे अन्यहि जीव । 'अनुमोदना' कहावे सोय ॥  
हर कपाय के चार प्रकार । गुणन किए सोलह विस्तार ॥  
तीन भेद हर एक चतलाय । अद्वैतालिस मन-बच-काय ॥  
सो जीवाधिकरण कुल भेद । चारशतक बत्तीस प्रभेद ॥८॥

अजीवाधिकरण के भेदः—

मूल :—निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्ग द्वि-चतुर्द्वि-त्रि-  
भेदा परम् ॥९॥

भाषा:— अथ अजीव अधिकरण घटाए ।  
रचना 'निर्वर्तना' कहाए ॥  
रस-रसाव 'निक्षेप' बखान ।  
मेल वस्तु 'संयोग' हि जान ॥  
भेद होहि क्रमशः दो चार ।  
संयोग हि पुनि दोय प्रकार ॥  
नाम 'निसर्ग' प्रवृत्तिहि सहे ।  
मन-बुद्ध-काय भेद त्रय कहे ॥१॥

९वें सूत्र की व्याख्याः—

निर्वर्तन दो भेद बखान । मूल और उत्तर गुण जान ॥  
मूल-क्षरीर, बचन, मन जान । स्वातोच्छ्वासहि सहित बखान ॥  
द्रुजा उत्तर गुण कहलाय । काष्ठ आदि पर विभ्र बनाए ॥  
वस्तु घरे बिन देखे जोय । 'अप्रत्यवेक्षित' कहिए सोय ॥  
दुष्ट मनस्विता रते-रखाए । 'दुष्प्रमृष्ट' निक्षेप कहाए ॥  
पटके जट्टी-पट्टी जान । सो 'सहसा निक्षेप' बखान ॥  
साफ किए बिन सेटे जोय । 'अनायोग निक्षेप' हि सोय ॥  
ज्ञान-मान में मेल मिलाय । 'युक्तपान संयोग' कहाय ॥  
अन्यहि वस्तु मिलावे जान । 'उपकरणहि संयोग' बखान ॥  
त्रय 'निसर्ग' के भेद बताय । दुष्ट प्रवृत्तिहि मन, बुद्ध, काय ॥  
आत्म व ग्यारह भेद बताय । सो अजीव अधिकरण कहाय ॥  
कर्मान्त्र व सामान्य प्रकार । आगम धर्म जानहु विस्तार ॥१॥

ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मों के आसृव के कारण.—

मूलः—तत्प्रदोष-निन्हव-मात्मर्यन्तिरायासादनोपधाता ज्ञानदर्श-  
नावरणयोः ॥१०॥

भाषाः— ईर्ष्या आदि 'प्रदोष' कहाय । -

'निन्हव' निज अज्ञान बताय ॥

'मात्सर्य' निज ज्ञान छिपाए ।

विघ्नहि 'अन्तराय' कहलाए ॥

'आसादना' और 'उपधात' ।

ज्ञान-दर्शनावरण बंधात ॥१०॥

१०वें सूत्र की व्याख्या —

ज्ञान अरु दर्शन के आवरण । कर्म कहे आसृव पट वरण ॥  
पर समापण बाधा राय । कर प्रयोग निज बल बंध, काय ॥  
मान करे नहि सम्यक ज्ञान । 'आसादना' कही सो जान ॥  
ता ही को यदि झूठा कहे । सो उपधात' हेतु को सहे ॥  
प्रदोषादि दो भेद बखान । त्रिन वश रहता दर्शन, ज्ञान ॥१०॥

असाता वेदनीय कर्म आसृव के कारण.—

मूलः—दु-रा-शोक-तापत्रन्दन-यध-परिदेवनान्मात्म-परोमयर धा-  
नान्य-सङ्केतस्य ॥११॥

भाषाः— 'दुःख', 'शोक' अरु 'ताप' कहाए ।

'आश्रन्दन' पुनि 'यध' बतलाए ॥

'परिदेवन' यह श्रन्दन मान ।

स्य-पर दुखी हो जा सों जान ॥

कर्म जसाता शान्त काज ।

सभी शत्रुयत रहे निराज ॥११॥

११वें गुरु की व्याख्या—

दुख मोक्ष कर गुरु दुख पाय । अथवा पर की हो दुखदाय ॥  
 या दोनों की ही हो बनेन । कर्मक्षय, महि मंगल भेग ॥  
 अथ बभूव द्विज, माह्वार । ग्यानात्म्य का करे विचार ॥  
 दीङ्-पूर दुख पावे जान । कर्मक्षय भी दुखी महान ॥  
 निर-पर दोनों की दुखदाय । जो उभयवस्थ बनेन बह्विधाय ॥११॥

छातावेदनीय कर्म के आश्रय के कारणः—

मूनः—भूत-वस्तुनृपत्या-दान परागसंघमादिभोग क्षान्ति शीघ्र-  
 मिति यद्वैद्यस्य ॥१२॥

भाषाः— प्राणी भीरु वती पर बया ।

नाम मोह 'मनुकम्पा' मया ॥

'दान' भीरु 'संघम-सहस्रग' ।

आत्मज्ञान भिन भी हो रयाग ॥

मन एकाग्र करे पर ध्यान ।

'योग' कहावे सो ही जान ॥

क्षमा भाव सो 'क्षान्ति' बलाए ।

सोन छोड़ना 'शीघ्र' कहाए ॥

कर्मक्षय हो उबत प्रकार ।

छातावेदनीय वित्तधार ॥१२॥

१२वें गुरु की व्याख्याः—

गुहाभास में कारण जान । छातावेदनीय सो मान ॥

योग्य, शास्त्र, अमर अहार । दाग बलाया चार प्रकार ॥१३॥

२२वें सूत्र की व्याख्या :—

सन पुरुषों की जो आदरे । मन संसार भीरता धरे ॥  
अप्रमाद, निश्छिन्न चारित्र । नाम कर्म शुभ कारण मीत ॥  
तासो वदन मिले मनुहार । सुन्दर, बलपुन विविध प्रकार ॥२३॥

तीर्थंकर नाम कर्म के आद्य के कारणः—

मूल—दर्शनविशुद्धिविनयसम्पन्नता शीलव्रतैष्वनतिचारोऽ  
भीक्षणज्ञानोपयोग-संवेगो शक्तितस्त्यागतपत्नी साधु-  
समाधि-वैद्यावृत्यकरण-महंदाधार्य-बद्धभूत-प्रयचन भक्ति-  
रावश्यकपरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रयचनवत्सलत्वमिति  
तीर्थंकरत्वस्य ॥२४॥

भाषाः— नाम कर्म तीर्थंकर शेष ।  
शीलह कारण कहे विशेष ॥  
'दर्श-विशुद्धि' प्रथम बतलाए ।  
'विनय-मानता' पुनि कहलाए ॥  
दोष रहित व्रत शील विचार ।  
'शीलव्रतैषु बिना अतिचार ॥  
'पाठन-पठन सु सम्पन्नज्ञान' ।  
अगोष्ठिग्न 'संवेग' बलान ॥  
शक्तिनुसार करे जो 'त्याग' ।  
शक्ति प्रमानहि 'तप' वैराग ॥

विघ्न तपस्वी, मुनि करि दूर ।  
 'साधु-समाधि' सहे भरपूर ॥  
 पुनः साधु की विपदा हरे ।  
 'धैर्यायुक्त्यकरण' सो करे ॥  
 'श्री अर्हंत देव', 'आचार्य' ।  
 उपाध्याय, आगम सिरधार्य ॥  
 भक्ति माथ इन सब में होय ।  
 'बहुभुत', 'प्रवचनभक्ति' हि सोय ॥  
 नियत समय, प्रतिदिन, चित्तलाय ।  
 घट 'आवश्यक कर्म' बताय ॥  
 जिनमत 'मार्ग प्रभावन' करे ।  
 'प्रवचन वस्तुलस्य' मन धरे ॥२४॥

२४वें सूत्र की व्याख्या:—

दर्शन विगुड हि भग्न बताए । आठ प्रकार बहे समझाए ॥  
 भक्ता हीन निराश्रित होय । 'निष्काशित' इच्छा विन जोय ॥  
 मर्मक दर्शन-ज्ञान-चरित्र । भरे हुए भंडार पवित्र ॥  
 ऊपर दिक्षहि अगुन्दर जान । तो भी धिरति न मुनि प्रतिमान ॥  
 खेद न तनिक हृदय मे आय । 'निर्विचिकित्सा' अग्न बहाय ॥  
 किंचित नहि मिथ्या श्रद्धान । सो 'अगूढदृष्टि' जान ॥  
 मन्त्र दोष नहि सर्वादि बताय । सो ही 'उपगूहन' कहलाय ॥

अन्तराय कर्म के आश्रय के कारण:—

मूल:—विघ्नकरणमन्तर्गतस्य ॥२७॥

भाषा:— दानहि, लाम, भोग, उपभोग ।

पंचम धीर्य कहें सब लोग ॥

इनमें विघ्न करे जो कोय ।

अन्तराय कर्मसिख होय ॥२७॥

२७वें सूत्र की व्याख्या:—

पाँचों में से ,रोके जोय । सोइ नाम कर्मसिख होय

दान समय यदि विघ्न लगाय । कर्मसिख 'दानान्तराय'

ता का हो अनुमाग विशेष । भाम सप्त कर्मों में दोय

इसी प्राप्ति सब ही में जान । कर्मसिख हों निश्चय मान ॥२७॥

(छठा अध्याय समाप्त)



## सातवाँ अध्याय

इस अध्याय में व्रतादि का स्वरूप बतलाया गया है ।

व्रतो का स्वरूपः—

मूलः—हिंसाऽनृत-स्तेयाग्रह-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥

भाषाः— 'हिंसा', 'अनृत' और 'स्तेय' ।

'अग्रह', 'परिग्रह' को तज देय ॥

त्याग नियम से निश्चय ठान ।

व्रत सो मन-संकल्प बखान ॥१॥

१मे सूत्र की व्याख्याः—

पर दुष्ट देना 'हिंसा' होय । 'अनृत' झूठ बहने सब कोय ॥

चोरी ही 'स्तेय' कहाय । और कुशील 'अग्रह' बतार ।

घन-दौलत-भांगहि अति प्रीत । सोइ 'परिग्रह' कहिए भीत ॥

पाप-विरक्ति विरति कह्ताय । आगम में सो व्रत बतलाय ॥

धर्म अहिंसा सर्व प्रधान । ता ते कयन प्रथम ही जान ॥

अन्य धर्म सब बाढ़ समान । रक्षा करने धर्म महान ॥१॥

व्रतों के भेदः—

मूलः—देश-सर्वतोऽणु-महतो ॥२॥

भाषाः— एक देश 'अणुव्रत' है मान ।

पूरा त्याग 'महाव्रत' जान ॥२॥

२सरे सूत्र की व्याख्याः—

कुछ वस्तु, कुछ काल प्रमाण । त्याग सोइ 'एक देश' बखान ॥

अथवा 'अणुव्रत' कहिए सोय । आजीवनहि 'महाव्रत' होय ॥२॥



अनृत (असत्य) का लक्षण:—

मूल—असदभिधानमनृतम् ॥१४॥

भाषा:— बात कष्टप्रद पर की होय ।

हे असत्य या 'अनृत' सोय ॥१४॥

१४वें सूत्र की व्याख्या:—

मिथ्या झूठ कहें सब कोय । कटुक सत्य भी मिथ्या होय ॥

काने को यदि काना कहे । व्यग्न-वाण सम ताको सहे ॥

हिंस्र वचन है असन समान । स्व-पर दुखी हों जासों जान ॥

धर्म अहिंसा सर्व प्रधान । अन्य चार रक्षार्थ बखान ॥१४॥

चोरी का लक्षण:—

मूल:—अदत्तादान स्तेयम् ॥१५॥

भाषा:— बिना दिए पर वस्तु उठाए ।

चोरी या स्तेय कहाए ॥१५॥

१५वें सूत्र की व्याख्या —

पर वस्तु, बिन अनुमति मान । गुरे भाव गह लेवे जान ॥

रहे अप्राप्य, प्राप्त या होय । चौर्य वृत्ति ही जानो सोय ॥१५॥

अग्रह का लक्षण:—

मूल:—मैथुनमग्रह ॥१६॥

भाषा:— रति-मुख-हेतु क्रिया ही मान ।

हे अग्रह या मैथुन जान ॥१६॥

१६वें सूत्र की व्याख्या:—

अहिंसादि पावन हित काम । सो ही कहिए ब्रह्म सत्ताम ॥

मैयुनादि बग बाधा होय । कार्य भवज्ञ कहावे मोय ॥  
 चारित मोह उदयवग जोय । स्त्री गुदर समागम होय ॥  
 ज मे रति-गुल हेतु प्रयाव । मैयुन मोद कहावे जान ॥  
 कभी-कभी दो गुन्य विचार । भयस दो स्त्री बितपार ॥  
 या कुवेला रयपुंदि मान । सब अन्तर्गन मैयुन जान ॥१६॥

परिग्रह का लक्षणः—

मूत्रः—मूर्च्छा परिग्रहः ॥१७॥

भाषाः— भाष ममर्याहि मूर्च्छा कहा ।

नाम परिग्रह दूजा सहा ॥१७॥

१७वें मूत्र की व्याख्याः—

मूर्च्छा अर्थ यही भीमान । भविजनश्च नहीं है जान ॥  
 बाह्य धातु मे ही मनि जाव । मूर्च्छा मोद परिग्रह भाव ॥  
 ममता दर्शन-ज्ञान-चरित्र । नहीं परिग्रह मूर्च्छा मित्र ॥  
 तुल्ला बटन गाँठ नहि दाम । अंग भाष परिग्रह नाम ॥  
 योग प्रमत्ताहि मन-वच-काय । सर्व पाप कारण बतलाय ॥१७॥

व्रती का स्वभावः—

मूत्रः—निः शल्यो व्रती ॥१८॥

भाषाः— भाषा मिथ्या थीर निदान ।

शल्य रहित त्रय, व्रती महान ॥१८॥

१८वें मूत्र की व्याख्याः—

शल्य कहीं तीनों दुखदाय । शल्य रहित सो व्रती कहाय ॥  
 शरीर शरीर शरीर शरीर । शरीर शरीर शरीर शरीर ॥

मन, यम और काय कुक्ष और । 'माया' शब्दों में सिरमौर ॥  
 नाहि होय सत्यहि श्रदान । 'मिथ्यादर्शन शब्ध' बगान ॥  
 विषयासक्ति 'निदान' कहाय । शून्य समान सभी दुष्टदाय ॥  
 तीनो शब्ध हृदय नहि जोय । सम्यक् व्रती कहावे सोय ॥  
 जग-धन-हित व्रत धारण करे । भोग चाहु या मन में धरे ॥  
 भेष भति हो साधु समान । व्रती कदापि न ताको जान ॥१८॥

व्रती के भेदः—

मूलः—अगार्यनगारयव ॥१९॥

भाषाः— व्रत पालक दो भेद बखान ।  
 गृह में वास 'अगारी' जान ॥  
 गृह त्यागी 'अनगारी' कहा ।  
 मुख्य विभेद प्रवृत्तिहि रहा ॥१९॥

अगारी व्रती का स्वरूपः—

मूलः—अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥

भाषाः— एक देश अणुव्रत से पाँच ।  
 ता ही नाम 'अगारी' साँच ॥२०॥

२०वें सूत्र की व्याख्याः—

व्रत जीवों की 'हिंसा' त्याग । त्याग 'असत' वश ईर्ष्या राग ॥  
 ले व्रत नहि पर वस्तु चुराए । 'अचोर्याणुव्रती' कहलाए ॥  
 तजे भोग पर-स्त्री जोय । 'ब्रह्मचर्याणुव्रती' सो होय ॥  
 सीमा धन, भोगादिक जान । अणु व्रत सो 'परिग्रह परिमान' ॥  
 पाँचों अणु व्रत पाले जोय । नाम 'अगारी' सार्यक सोय ॥२०॥

ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਸਾਥ ਮੀਰ ਹਨ —

၃-၂-၂၀၁၆ ခုနှစ်၊ ဧပြီလ ၁၀ ရက်နေ့၊ ဦးစီးဌာနချုပ်၊ ရန်ကုန်  
 မှူးစီးမှုဌာနချုပ်မှူးရုံးမှ အမတ်ကြီးအဖွဲ့သို့ အကြောင်းအရာ (၁၀/၁)

२:— गण उपाधि 'महाश्री' और ।  
 कष्टिहृत् तद्वत् ध्यातव्यं निरमोह ॥  
 'दिव्यं' अथ 'देवता-निरति' हो जाय ।  
 गमनादिहृत् वा कहे प्रमाण ॥  
 कथा 'अनर्था-वृत्ति' अथ मोक्ष ।  
 विद्या नाम अथ तत्त्वज्ञान ॥  
 'गामादिहृत्', 'प्रोक्षणीयवायु' ।  
 कहे प्रमाणो धर विद्यात ॥  
 'परिष्कारोपयोग - परिष्कार' ।  
 'अनिधि गविनाम' हि पुनि जान ॥२१॥

१६ अथ श्री कृष्णार्जुनसंवादे —

[illegible]

मो सब कर्म 'प्रमाद चरित्र' । दण्ड-अनर्थहिं तीजा मित्र ॥  
 विष, शस्त्रादि हिंस सामान । दिए कहावे 'हिंसादान' ॥  
 पाप वृत्ति हो मुने, मुनाए । कथा 'अशुभ श्रुति' सोइ कहाए ॥  
 इनका त्याग करे जो कोय । 'विरति-अनर्थ-दण्ड व्रत' सोय ॥  
 समय नाम आत्म का जान । आत्म ध्यान 'सामायिक' मान ॥  
 करे सामायिक सन्ध्या तीन । थावक सो व्रत मे पन्धीन ॥  
 अशन, भक्ष, लेह्य अह पान । त्याग करे उवासाहि जान ॥  
 पचेन्द्रिय निज तजहि विलास । रहे उासी, सो उवासा ॥  
 अष्टम अह चौदस तिथि चार । प्रतिमासहि उपवासा विचार ॥  
 पर्व दिवस ही प्रोजव होय । वृत्त प्रोजयोरासाहि सांय ॥  
 इन्नादिक अह भोजन पान । एक बार ही 'भोग' बरतान ॥  
 भोगी जावे बारबार । वस्त्रादिक 'परिभोग' विचार ।  
 वृत्त इनका मन सीमा ठान । 'परिभोगोपभोग परिमान' ।  
 तिथि निश्चित नहि जाको जान । वृत्ती अतिवि को देवे दान ।  
 'अतिथि-संविभागहि-वृत्त' सोय । पाले वृत्ती अगारी हांय ।  
 औषध, शास्त्र, अभय, आहार । 'अतिथि रुविभागहि वृत्त' चार ।  
 पच वृत्ती मे दूढता लाए । विरति तीन 'गुणवृत्त' कहलाए ॥  
 आरम सदमन हेतु विचार । अतिम हैं 'शिक्षावृत्त' चार ॥२१॥  
 सल्लेखना का वर्णन:-

भूल:-मारणान्तिही सल्लेखना जोपिता ॥२२॥

भाषा:- मरण काल को निश्चित जान ।

सल्लेखना मनहि ले ठान ॥

खान-पान, मोहादिक तजे ।

काय, कषाय कृशे, प्रभु मजे ॥२२॥

२०वे मूत्र की रसावस्था.—

आयुष्य बर परित्याग मरीच । मो दार मृत्यु कदावे मीन ॥  
 निरुद्ध मूत्र का कर अनुमान । रसावन कर दे भोजन पान ॥  
 राग-द्वेष, जल-मोह भुवाण । मुखसे ममता भाव दृष्टाण ॥  
 आसन बिडम्बर में निराचरे । निरुद्धमूत्र का स्वागत करे ॥  
 मूत्र जही पर निश्चित होय । आत्ममान नहिं कहिए सोय ॥  
 राग, द्वेष बग मूत्र भुवाण । दूध मरे, विष आदिक ग्राण ॥  
 आत्मपात मो ही को जान । अन्तर है भू-गमन गमान ॥  
 आग मगी यदि घर में होय । बन्धु अमृत्यु बचावें सोय ॥  
 मरण बाल में मोह समान । धर्म अमृत्यु गहै, तत्र प्रान ॥  
 बेदन-मूत्र घटे किन्धार । धुम-गति हो परलोक मँसार ॥२३॥

अथ धृती के दोषोः— (अतिचारो) का विवेचन करने हैं ।

सम्प्रादर्शन के अतिचारः—

मूत्र.—गता-काया विविक्तिगाऽद्विप्रसत्ता सत्त्वा  
 सम्यग्ध्येरतिचाराः ॥२३॥

भाषाः— सम्पक दर्शन के अतिचार ।

अथवा दोष मुनह चित्तधार ॥

आगम द्विविधा 'शंका' मान ।

भोग चाहना 'कांक्षा' जान ॥

घृणा दुस्ती, रोगी से होय ।

अथ 'विचिकित्सा' कहिए सोय ॥

भन विप्यास्य करे सम्मान ।

सम्प्रादर्शन के अतिचारः—

ताहि वचन मे भी आरे ।

‘अन्य दृष्टि का मंस्तव’ करे ॥२३॥

मो पन दोष अनिह नहि गोप । मन्मद ने वलि मोप ॥२३॥  
दा ओर मोरो के अतिचार —

मूल — वृत्त-शोभेण वध पन वधानम ॥२४॥

भाषा:— वृत्त अरु शील कहै अतिचार ।

पाँच पाँच क्रमसः चितधार ॥२४॥

मन्मद मोन, वृत्त पन विचार । पान पान मयके अनिवार ॥  
अहिमादि वृत्त पन महान । मन्मद मोन रक्षक मम जान ॥२४॥  
अहिमाणु वृत्त के अनिचार —

मूल — वन्ध-वध-च्छेदानिभारारोपणान्नवाननिरोधा ॥२५॥

भाषा:— जीव ‘वन्ध’, ‘वध’ अथवा ‘छेद’ ।

वृत्त अतिचार अहिंसा नेव ॥

वध ‘अतिमारारोपण’ जान ।

पैंच निरोध ही भोजन-पान ॥२५॥

२५वें मूल की व्याख्या —

विजरा या मूँटादि बंधाए । पशु-पक्षिन की, ‘वन्ध’ कहाए ॥  
कोटे, बेठादिक की मार । कहलावे सो ‘वध’ चितधार ॥  
वध के अर्थ न हत्या यही । हत्या विरति हुई, वृत्त जही ॥  
कान, नाक, पूँछादि कटाए । अतिचार हि मो ‘छेद’ कहाए ॥  
बहुत अधिक लादे सामान । सो ‘अतिमारारोपण’ जान ॥  
चारा ठीक समय न पिनाए । ‘अन्नहि पान निरोध’ कहाए ॥  
सो पाँचो ही हैं चितधार । अहिमाणुवृत्त के अतिचार ॥२५॥

।णु ग्रन के अतिचारः—

—मिथ्योपदेश-रहोम्याख्यान-कूटलेखनक्रिया-  
न्यासापहार-साकारमत्रभेदा. ॥२६॥

।:— 'मिथ्योपदेश', 'रहोम्याख्यान' ।  
'लेखन-कूट-क्रिया' त्रय जान ॥  
चव 'न्यासापहार' चितघार ।  
पंचम 'मत्रभेद-साकार' ॥  
सो मविजन मन लीजे धार ।  
हैं सत्याणु वतहि अति चार ॥२६॥

अहित उद्देश प्रदान । सो 'मिथ्योपदेश' है जान ॥  
युगत इति कहहि वरान । आश्रय छोड़ 'रहोम्याख्यान' ॥  
बात पर देख कैसाए । 'लेखन-कूट-क्रिया' कहाए ॥  
क धरोहर देवे कम । सो 'न्यासापहार' बिभ्रम ॥  
वश पर बात बताय । 'मत्र भेद साकार' कहाए ॥२६॥

र्याणुग्रन के अतिचार —

—स्तेनप्रयोग-तदाहुतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-

हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपरूपवहारा ॥२७॥

।:— 'स्तेन-प्रयोग' प्रथम है जान ।  
दूजा 'तदाहुतादान' ॥  
त्रय 'विरुद्ध-राज्यातिक्रम' ।  
चोर-दजारी आदिक भ्रम ॥  
चव 'हीनाधिक मानोन्मान' ।

(निम्नलिखित शब्दों के अर्थ जान ॥२७॥)





सामायिक के अनिचारः—

मूलः—योगदुष्प्रणिधानानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥

भाषाः— सामायिक अतिचार भ्रष्टान् ।

काय, वचन, मन 'दुष्प्रणिधान' ॥

अथ अतिचार 'अनादर' सोय ।

'स्मृत्यनुपस्थापन' पंच होय ॥३३॥

३३वें सूत्र की व्याख्या —

यदि शरीर निश्चल ना होय । बोले मंत्र अशुद्ध हि जोय ॥

सामायिक में चित्त न रमाय । हो कषाय वश इन-उत जाय ॥

अथ रोगो का दुष्प्रणिधान । निषिद्ध अशुद्धहि, चकल मान ॥

क्रिया सामायिक, भ्रष्टा नाय । सोइ 'अनादर' है कहलाय ॥

निरय-क्रियादिक, पाठ भुलाए । 'स्मृत्यनुपस्थापन' कहलाय ।

पाँच दोष सो ही वितचार । सामायिक के हैं अतिचार ॥३३॥

प्रोपधोपवास व्रत के अनिचारः—

मूलः—अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितोत्सर्गादान-संस्तरौपक्रमणानादर

स्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥

भाषाः— बिन देखे, बिन शोधन मान ।

मल-भूत्रादि विसर्जन जान ॥

सामग्री, वस्त्रादि उठाय ।

आसनादि या देय विधाय ॥

करे अनादर, क्रिया भुलाए ।

उपवासहि अतिचार बताए ॥३४॥

भूत, प्यास वश आदर नाय । व्रत आवश्यक क्रिया भुलाए ॥

नन्तु न सस सब क्रिया विचार । प्रोपध उपवासहि अतिचार ॥३४॥



६वें सूत्र की व्याख्या:-

रे पत्र पर दे आहार । अथवा ता सों दके विचार ॥  
वय न दे पर दे दिनवाए । सो ही 'परमपदेश' कहाय ॥  
अदर सहित न देवे दान । ईर्ष्या औरो के प्रति मान ॥  
समय मुनि देवे आहार । अतिवि सविभागहि अतिचार ॥३६॥

सल्लेखना के अतिचार:-

मूल:-जीविज-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध-निदानानि  
॥३७॥

व्याख्या:- जीवित मरणाशंसा दोष ।  
मन मित्रहि अनुराग समोय ॥  
सुखानुबन्धन और निदान ।  
सल्लेखन अतिचार बखान ॥३७॥

७वें सूत्र की व्याख्या:-

एक धार कर से व्रत धार । फिर भी हो जीवन से प्यार ॥  
अतिचार सो पहला होय । जीवन इच्छा कहिए सोय ॥  
रोग आदि कष्टहि घबड़ाए । शीघ्र मरण इच्छा मन लाय ॥  
सो दूजा अतिचार बखान । 'मरणाशंसा' ता को जान ॥  
बेल-कूद के साथी मित्र । पूर्वहि भोगे भोग विचित्र ॥  
चैन-सो 'मित्रहि अनुराग' । 'सुखानुबन्ध' सुखो से राग ॥  
भोग चाह परलोक हि होय । पंच 'निदान' कहलावे सोय ॥  
सो पांचों मन लीजे धार । सल्लेखना व्रतहि अनिचार ॥३७॥



३६वें गुरु की श्रुति -

हरे पर पर दे आहार । भयना ता मो हके विचार ॥  
 रस न दे पर दे दिग्वाए । गो ही 'परव्यपदेश' कहाय ॥  
 आदर सहित न देवे दान । ईश्वरी ओरो के प्रति मान ॥  
 अगम्य मुनि देवे आहार । अतिवि मविभागहि अनिवार ॥३६॥

सत्सेवना के अनिवार:-

मूल:-जीविन-मरणाशंसा-मित्रानुराग-गुणानुबन्ध निदानानि  
 ॥३७॥

भाषा:- जीवित मरणाशंसा होय ।  
 मन मित्रहि अनुराग समोय ॥  
 गुणानुबन्धन और निदान ।  
 सत्सेवना अतिचार यत्नान ॥३७॥

३७वें गुरु की व्याख्या:-

एक बार कर से सत्र बार । फिर भी हो जीवन मे व्याप ॥  
 अतीचार सो पहना होय । जीवन इच्छा कहिए सोय ॥  
 रोग आदि कष्टहि धबकाए । शीघ्र मरण इच्छा मन साथ ॥  
 सो दूता अतिचार नयान । 'मरणाशंसा' ता की जान ॥  
 मेल-कूद के साथी मित्र । पूर्वहि भोगे भोग विचित्र ॥  
 विनन-गो 'मित्रहि अनुराग' । 'गुणानुबन्ध' सुनों मे राम ॥  
 भोग चाह परलोक हि होय । ऐसे 'निदान' कहलावे सोय ॥  
 सो पाषां मन सीजे चार । सत्सेवना अतिहि अनिवार ॥३७॥



इन आठों कर्मों की उत्तर प्रकृतिर्या.—

मूल.—पञ्च-नव-द्वयष्टाविंशति-चतुर्द्विषत्वाग्निद्-द्वि-

पञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥५॥

भाषा:— पुनि प्रभेद आठों के कहे ।

पँच, नौ, दस, अठ्ठाइस लहे ॥

चार, द्वापलिस, दो, पँच मान ।

सो प्रभेद हैं क्रमशः जान ॥५॥

पहले ज्ञानावरण कर्म के पाँच भेद —

मूल:—मति श्रुतावधि-मनः पर्यय केवलानाम् ॥६॥

भाषा:— ज्ञानावरण पाँच हैं मान ।

मति, श्रुत, अवधि प्रथम त्रय जान ॥

मन-पर्यय चव, केवल पंच ।

ज्ञानावरण न संशय रंघ ॥६॥

छठे मूल की व्याख्या.—

इन्द्रिय ज्ञान न मन से आए । सो मतिज्ञानावरण कहाए ॥

मास्त्र पठन पर भी नहि ज्ञान । श्रुत ज्ञानावरणहि सो जान ॥

भूत-अविध्यत ज्ञान न होय । अवधि-ज्ञान-आवरणहि सोय ॥

ज्ञात न हो पर मन की बात । मन पर्यय आवरण कहात ॥

पूर्ण ज्ञान को रोके जोय । केवल ज्ञानावरणहि सोय ॥६॥

दूसरे दर्शनावरण कर्म के ९ भेद:—

मूल:—चक्षुरवधूरवधि-केवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-



वेदनीय वश गुण-दुग होय । आयु कर्म मर गोके जोय ॥  
 अन्य कर्म भी दुगो प्रसार । भिन्न-भिन्न फल है निवार ॥  
 कर्म स्वभाव प्रकृति गो मान । वंश ममय हो 'स्थिति' जान ॥  
 तीव्र, मंद फल शक्ति विचार । गो 'अनुभाग-वध' निवार ॥  
 कर्म प्रकृति अरु आत्म प्रदेश । संख्या मिलि हो वध विशेष ॥  
 आत्म, कर्म जग मूय समान । भिन्न हो 'वध प्रशक्ति' जान ॥  
 तीव्र मन्द जस योग, कषाय । तम धर्मो म अन्तर आय ॥  
 'प्रकृति', 'प्रदेश' हि योग बनाय । 'स्थिति' अरु 'अनुभाग' कषाय ॥  
 प्रकृति वध दो भेद बनाय । मूल अरु उत्तर प्रकृति कहाय ॥  
 मूल प्रकृति के आठ प्रभेद । उत्तर सप्त-अङ्गान्वित भेद ॥३॥  
 मूल प्रकृति वध के आठ भेद.—

मूल.—आयो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाम-

गोत्रान्तरायः ॥४॥

भाषा:— प्रकृति वंश तब नेद बताए ।

'ज्ञान', 'दर्शनावरण' कहाए ॥

तीजा 'वेदनीय' है मान ।

चोया 'मोहनीय' ही जान ॥

'आयु', 'नाम' सत 'गोत्र' कहाय ।

'अन्तराय' अष्टम दुखदाय ॥४॥

'ज्ञानावरण' दके जो ज्ञान । 'दर्शनावरण'—न हो थडान ॥

'वेदनीय' वश सुख-दुख होय । 'मोहनीय' सो, मोहे जोय ॥

'आयु'—आयु निर्धारित करे । 'नाम'—वदन, अंगादिक धरे ॥

उच्च, नीच कुल जासो होय । कर्म 'गोत्र' कहलावे सोय ॥

दानादिक में विष्णु तगाय । सो ही 'अन्तराय' कहलाय ॥

भोजन आदिक को न्यो खाय । अस्थि, मांस, मल-मूत्र बनाय ॥

स्यों ही कर्म प्रकृति अनुसार । अष्ट कर्म बंधते चित्तधार ॥४॥

उन आठों कर्मों की उत्तर प्रवृत्तियाँ—

मूल—पञ्च नव-द्वयष्टाविंशति-चतुर्द्विषत्वाग्निद्वि-

पञ्चभेदा मयात्रयम् ॥५॥

भाषाः— पुनि प्रभेद आठों के कहे ।

पँच, नौ, दस, अष्टादश लहे ॥

चार, द्वाविंश, दो, पँच मान ।

सो प्रभेद हैं क्रमशः जान ॥५॥

पहले ज्ञानावरण कर्म के पाँच भेद—

मूलः—मति श्रुतावधि-मन-पर्यय केवलानाम् ॥६॥

भाषाः— ज्ञानावरण पाँच हैं मान ।

मति, श्रुत, अवधि प्रथम त्रय जान ॥

मन-पर्यय चतु, केवल पंच ।

ज्ञानावरण न संशय रंध ॥६॥

छठे मूल की व्याख्या—

द्विद्वय ज्ञान न मन में आए । सो मतिज्ञानावरण कहाए ॥

मास्त्र पटन पर भी नहि ज्ञान । श्रुत ज्ञानावरणहि मो जान ॥

श्रुत-अविध्यत ज्ञान न होय । अवधि-ज्ञान-आवरणहि मोय ॥

ज्ञान न हो पर मन की यात । मन पर्यय आवरण कहात ॥

पूर्ण ज्ञान को रंके जोय । केवल ज्ञानावरणहि सोय ॥६॥

दूसरे दर्शनावरण कर्म के ९ भेदः—

मूल—चक्षुरवधिरवधि-केवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-

प्रचलाप्रचला स्त्यानमुदयश्च ॥७॥

वेदनीय वश गुण-दुष्ट होय । आयु कर्म भय मोहे जोय ॥  
 अन्य कर्म भी दृष्टी प्रसार । भिन्न-भिन्न फल है नितधार ॥  
 कर्म स्वभाव प्रकृति मो मान । बन्ध ममय हो 'स्थिति' जान ॥  
 तीव्र, मन्द फल शक्ति विचार । मो 'अनुभाग-बंध' नितधार ॥  
 कर्म प्रकृति अह आत्म प्रदेश । संस्था मिलि हो यथ विगत ॥  
 आत्म, कर्म जन दूष नमान । मिल हो 'यथ प्रदेश' जान ॥  
 तीव्र मन्द जस योग, कषाय । गम यथों में अन्तर आय ॥  
 'प्रकृति', 'प्रदेश' ही योग बनाय । 'स्थिति' अह 'अनुभाग' कषाय ॥  
 प्रकृति यथ दो भेद बनाय । मूल अह उत्तर प्रकृति कहाय ॥  
 मूल प्रकृति के आठ प्रभेद । उत्तर वन-प्रकृत्यालिस भेद ॥३॥  
 मूल प्रकृति यथ के आठ भेद —

मूलः—आयो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाम-

गोत्रान्तरायः ॥४॥

भाषाः— प्रकृति बंध शठ भेद बताए ।  
 'ज्ञान', 'दर्शनावरण' कहाए ॥  
 तीजा 'वेदनीय' है मान ।  
 चौथा 'मोहनीय' ही जान ॥  
 'आयु', 'नाम' सत 'गोत्र' कहाय ।  
 'अन्तराय' अष्टन दुष्टदाय ॥४॥

'ज्ञानावरण' ढके जो ज्ञान । 'दर्शनावरण'—न हो श्रद्धान ॥  
 'वेदनीय' वश सुख-दुष्ट होय । 'मोहनीय' सो, मोहे जोय ॥  
 'आयु'—आयु निर्धारित करे । 'नाम'—वदन, अंगादिक धरे ॥  
 उच्च, नीच कुल जासो होय । कर्म 'गोत्र' कहलावे सोय ॥  
 दानादिक में विघ्न लगाय । सो ही 'अन्तराय' कहलाम ॥  
 भोजन आदिक की च्यो खाय । अस्थि, मांस, मल-मूत्र बनाय ॥  
 त्यों ही कर्म प्रकृति अनुसार । अष्ट कर्म बंधते चितधार ॥४॥

वीरे रत्न मोहनीय के २८ भेदः—

पुत्र.—दशान-चारित्रमोहनीयारुपाय-वपायवेदनीयाम्यामित्र-  
 द्वि-नक्ष-मोहनीयभेदः मुख्यक-मिष्याय-अदुमयाय  
 कपाय-वशावो हास्य-वररति-शोक-मय-जुगुप्सा-  
 स्त्री-पुत्र-ननुसक-वेदः अनन्तानुबन्धप्रत्यक्ष-पान-  
 प्रत्याभ्यास-मग्नमनविह्वल्यार्थ-वश-शेष-मान-  
 माया-लोभा ॥९॥

:- मोहनीय के मुनिए मित्र ।

मुख्य भेद दशान, चारित्र ॥

दशान मोहनीय प्रय जान ।

भेद प्रथम 'सम्यक्' यत्नान ॥

दूजा सो 'मिष्याय' यत्नाए ।

प्रय 'सम्यक्-मिष्याय' कहाए ॥

चारित्र मोहनीय दो मान ।

'नो-कपाय-वेदन' नो जान ॥

हास्य, वररति, रति, शोक यत्नान ।

मय, पुनि पष्ट जुगुप्सा जान ॥

स्त्री-पुत्र-ननुसक येव ॥

'वेदनीय अरुपाय'हि भेद ॥

दूजा 'वेदनीय सकपाय' ।

ता के सोनह भेद यत्नाय ॥

श्रीष, मान, माया अरु लोभ ।

अनन्तानुबन्धी चय लोभ ॥

न'य' — मेरी वर्णनाचरण नि मा १ ।  
 अ १, अचर, अती १ अच न १ ।  
 'के-य', 'ई-य' हैं अच अच ।  
 गच्छो — 'ई-य' अच अच ।  
 अ १ अच न नि 'अच-य' अच ।  
 'अच-य' अच अच अच ।  
 अच अच अच अच अच ।  
 अच अच अच अच अच ।

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

[illegible]

ਸਾਂਗਰੋ ਕਰਮੰ ਭੇਦਨੀਯ ਤੇ = ਭੇਦ —

मृगः—मदमदं च ॥८॥

:- घेदनीय दो भेद ब्रह्मान ।

साता और असाता ज्ञान ॥

मुगानुभव हो 'साता' काज ।

दुष्टानुमूति 'असाता' राज १८॥



चार 'अव्याख्यानवर्ण' ।

पुनः च 'अव्याख्यानवर्ण' ॥

आभी पुनः संवत्सरं चकार ।

मोक्षीति अष्टादश तार ॥६॥

१३ पुनः च व्याख्या

१३ मन्त्रो मन्त्रकं चकार । दश पाद 'अव्याख्यान' वक्तार ।  
 निष्ठा अष्टा मा भे चार । दश पाद 'अव्याख्यान' वक्तार ।  
 मध्य पाद चारो मन्त्र जात । निष्ठा मन्त्रकः 'अव्याख्यान' वक्तार ।  
 'होम्य होमि, रवि' चार वक्तार । दश पाद 'अव्याख्यान' वक्तार ॥  
 दश 'अव्याख्यान' मन्त्र जात । नीति चार जात मन्त्र जात ॥  
 मा भो वदनीयं अव्याख्यानं । मा भो वदनीयं सप्तपाद ॥  
 अष्टा वदनीयं सप्तपाद भवति नोद न । मा भिष्यान् वक्तार नन ॥  
 मा भो पुनः कथाय चार । अन्तः सप्तपादो निष्ठावर्ण ॥  
 वर तनिक नोद मन्त्र वरण । मा भो 'अव्याख्यानवर्ण' ॥  
 मा वदनीयं न मन्त्र होत । 'अव्याख्यानवर्ण' हि मोक्ष ॥  
 मन्त्र के मन्त्र जन्ती जाय । मा ही हे 'अव्याख्यान' वक्तार ॥  
 जायादिक से ही वदनाय । नो कथाय हे तनिक वक्तार ॥  
 पुनः सप्तमी-यग इतराय । मा हि इत्यारे वर दश जाय ॥  
 नो कथाय भी मोक्ष समान । विन वक्तार के निष्ठा जान ॥  
 सप्तमे अधिक प्रथम चलवान । दूजी होय अधिक चलवान ॥  
 अथ कथाय चलवान कहाय । प्रमत्तः च वदनीय वक्तार ॥  
 अस्ति मोक्ष के भेद पञ्चीत । दश मोक्ष मित अष्टादश ॥१॥

पाँचवें आयु कर्म के ४ भेदः—

मूलः—नारक-नैर्ऋत्योन्-मानुष्य-दैवानि ॥१०॥

भाषाः— आयु कर्म चय नैव यत्ताए ।

नारक अह तिर्यञ्च कहाए ॥

मानुष्यायु सीमा, चय देव ।

सो कर्मानुसार गुन संय ॥१०॥

१०वें मूल की व्याख्याः—

होने पर जीवित कहाए । अह अभाव में मृत्यु यत्ताए ॥

मत्र धारण में कारण जोय । भविजन 'आयु' कहावे सोय ॥

आयु कर्म वश गतिमाँ चार । निश्चित हूँवें उक्त प्रकार ॥१०॥

छटे नाम कर्म की ४२ प्रकृतियाँ :—

मूल-गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बन्धन-सघात-संस्थान-

सहनन-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णानुपूर्व्यागुरुत्तयुपधात-परधाता-

सवोद्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येक शरीर-वश-मुमग-

मुस्वर-धुम गूदम-वर्माग्नि स्थिरादेम-यशः कीर्ति-सेतराणि

तीर्थकरत्वं च ॥११॥

भाषाः— नाम कर्म हैं व्याप्ति मान ।

'गति' पुनि 'जाति', शरीर, ब्रह्म ॥

'अंगोपांग' तथा 'निर्माण' ।

'बन्धन', 'सघातहि', 'संस्थान' ॥

'सहनन', 'स्पर्शहि', 'रस', 'गन्ध' ।

'वर्ण', 'आनुपूर्व्य' हि हैं बंध ॥

पुनः 'अगुरुत्तयु' अह 'उपधात' ।





६४ मूत्र की व्याख्या:—

दमो धर्म का उच्च स्वरूप । उत्तम सहित मुद्राएँ अनूप ॥  
 क्रोध काज पर 'क्षमा' प्रदान । गर्व होनता 'मार्दव' जान ॥  
 मन-वच-काय कुटिलता तजे । सो ही 'आर्जव' गुण में सजे ॥  
 'दौर्ब' कहावे सोम अभाव । सुन्दर 'सम्य' बचन मुक्त लाव ॥  
 राग हीनता सयम जान । इन्द्रिय, प्राणि भेद दो भान ॥  
 मन उपवासहि 'तप' बतलाए । तजे परित्यज 'रसाग' कहाए ॥  
 घरीरादि में ममता नाय । सो 'आतिथन' धर्म कहाय ॥  
 स्त्री-विषय आदि में राग । 'ब्रह्मचर्य' में इनका त्याग ॥६॥

धारह अनुप्रेक्षा (भावना):—

मूल:—अनित्यधरण-संसारकथाव्यत्वाद्युप्यासव-संवर-निर्जरा-  
 लोका-बोधिदुर्लभ-धर्मस्वात्मगत-तत्त्वानुचिन्तन-मनुप्रेक्षा ॥७॥

भाषा:— धारह अनुप्रेक्षा चित्तधार ।  
 सो 'अनित्य', 'अधरण', 'संसार' ॥  
 'एकत्व' हि 'अन्यत्व' बतलाय ।  
 भार्या हि 'अनुवि' धूणित है काय ॥  
 'आसव', 'संवर' अरु 'निर्जरा' ।  
 'लोक', 'बोधिदुर्लभ' है धरा ॥  
 'धर्म' हि 'स्वात्मगत' धरान ।  
 भावनाएँ संवर हिन जान ॥७॥

७वें मूत्र की व्याख्या:—

धारह अनुप्रेक्षा विद्वान् । मनहि भावना हो दिन रात ॥



मूल:—एकादश त्रिने ॥११॥

भाषा:— 'सहै परीपह जिन भगवान ।

अधिकाधिक ग्यारह ही जान ॥११॥

११वें सूत्र की व्याख्या:—

चार पानिया कर्म अभाव । वेदनीय का कुछ सद्भाव ॥  
 ग्यारह पण्डित न भव जान । अधिकाधिक तेरह गुणधान ॥  
 भूख, प्यास अरु गर्मी, शीत । 'दण-मसक' अरु 'धर्म' मोत ॥  
 दम्पा, अघ, मन, रोग बन्धान । 'गुण-कर्म' सब ग्यारह जान ॥  
 मोहनीय का उदय न होय । गतिहीन हैं परिपह सोय ॥  
 वेदनीय कुछ उदय विचार । वही परीपह सो उपचार ॥  
 गतिहीन विष के सम जान । बहने ही भर की सो मान ॥११॥

मूल:—बादरसाम्पराये सर्वे ॥१२॥

भाषा:— 'बादर साम्पराय गुणधान ।

षट् से से कट नी तक जान ॥

स्थूल कषाय सहित हैं सोय ।

सभी परीपह इनमें होय ॥१२॥

जिम कर्म के उदय से कौन सी परीपह होती हैं (११वें सूत्र तक):—

मूल:—ज्ञानावरणे प्रजाज्ञाने ॥१३॥

भाषा:— ज्ञानावरण कर्म से मान ।

परिपह 'प्रज्ञा' अरु अज्ञान ॥१३॥

१३वें सूत्र की व्याख्या:—

निज पादित्य सर्व नहि होय । 'प्रज्ञा' परिपह जीते सोय ॥  
 अज्ञानी कह, दे धिक्कार । मन में तनिक न होय विचार ॥  
 ज्ञान प्राप्ति मे ही दे ध्यान । जयी परीपह सो अज्ञान ॥१३॥





भाषा -

( १४८ )

बाह्य तपहि पट भेद बताए ।  
'अनशन', 'अवमौदर्य' कहाए ॥  
तीजा 'वृत्तिपरीसंख्यान' ।  
चौथा 'रसपरित्याग' बखान ॥  
पंच 'विविक्त शम्यासन' रहा ।  
'काय बलेश' तप अंतिम कहा ॥ १६ ॥

१९वें सूत्र की व्याख्या -

मुख्य भेद तप के दो मान । 'बाह्य' और 'अभ्यंतर' जान ॥  
मुनि पट भेद प्रत्येक विचार । सो करते मुनिए चित्तधार ॥  
यश घनादि फल बाह्य न जान । समय मिद्धि हेतु ही मान ॥  
भोजनादि को त्यागे जोय । 'अनशन' तप को पाले सोय ॥  
ताहि हेतु ले अस्वाहार । 'अवमौदर्य' तपहि चित्तधार ॥  
मुनि आहार-नियम मन ठान । सो तप 'वृत्तिपरीसंख्यान' ॥  
दूष दही, घी, भीठा, तेल । नमक त्याग रस परिग्रह शूल ॥  
दमन करे रसना जो कोय । 'रस परित्याग' करे तप सोय ॥  
ब्रह्मचर्य साधन, स्वाध्याय । जतु विहीन जगह में जाय ॥  
भासनादि एगान्त-स्थान । मो 'विविक्त शम्यासन' जान ॥  
ब्रह्म सत्ते गर्भी में जाए । शीत गुले में ध्यान लगाए ॥  
पट सहन का ही अभ्यास । 'काय बलेश' तप कठिन प्रयास ॥  
'गह्र त्रिया' जानें सब कोय । कहे बाह्य तप ताते सोय ॥  
तप बनेन 'मुद साधा' जाए । 'परिग्रह' सोइ अचानक आए ॥ १९ ॥

शुत केवली सहें पुनि मान ।

धर्म, आदि शुक्लहि दो ध्यान ॥३७॥

३७वें मूत्र की व्याख्या:—

चोइह पूर्वहि माता जोय । शुन केवली कहाये सोय ॥

अष्टम से द्वादश गुणधान । होते आदि शुक्ल दो ध्यान ॥

करते समय येनि हो 'धर्म' । ध्यान बाद में शुक्लहि धर्म ॥

शुक्ल ध्यान अब भेद यत्नान । किया मूत्र उन्तानिस जान ॥३७॥

मूत्र.— परे केवलिनः ॥३८॥

भाषा:— दोय शुक्ल दो करहि प्रयोग ।

सो केवली सयोग, अयोग ॥३८॥

३८वें मूत्र की व्याख्या:—

मुनि जो हैं तेरह गुणधान । तिन्हें सयोग केवली जान ॥

जो चोइह गुणधान हि जाए । सो अयोग केवली कहाए ॥३८॥

शुक्ल ध्यान के भेद—

मूल—पुनरुत्पत्तिवितर्क-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रिया-

निवर्त्तनी ॥३९॥

भाषा.— शुक्ल ध्यान अब भेद यत्नाए ।

इक 'पुनरुत्पत्तिवितर्क' कहाए ॥

पुनि 'एकत्व वितर्क' अज्ञान ।

.. 'सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति' हि जान ॥

'व्युपरत क्रियानिवर्त्ति' हि अंत ।

लक्षण नाम समान सहंत ॥३९॥



समस्त रीद्र ध्यान नहि मान । रीद्र साथ नहि संय-  
 अतिहि कृष्ण, नील, कापोत । जिनकी लेश्या तिनवें  
 तप्त लोह ज्यों जल सोलाय । रीद्र ध्यान त्यो कर्म तिव

धर्म ध्यान का स्वरूप:—

मूल:—आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥३६॥

भाषा — धर्म ध्यान चव भेद बताय ।

प्रथम 'आज्ञा' और 'अपाय' ॥

प्रथ 'विपाक' चौथा 'संस्थान' ।

सो विचार या विचय बखान ॥३६॥

३६वें सूत्र की व्याख्या:—

मद बुद्धि, तद्गुण हि अभाव । सूक्ष्म युक्ति वग ग्रहण न भाव ॥  
 तब आगम जो तब बताय । 'आज्ञा' सो श्रद्धान कहाय ॥

अथवा स्वयं ह्ये गुणवान् । दे औरों को कैये जान ॥  
 विनन सो, जिनधर्म प्रचार । 'आज्ञा विषय' सभी विचार ॥

मिरया दर्शन-ज्ञान-चरित्र । स्व, पर दूर हो कैये मित्र ॥  
 कैये अप छूटै गसार । विनन सोइ 'अपाय' विचार ॥

भित्त-मित्र जो हैं गुणवान् । कर्म-बंध किन में तिन जान ॥  
 कर्म निजंता कैये होय । ध्यान 'विपाक' कहाये सोय ॥

विनन-त्रय स्वभाव, आचार । सो 'संस्थान विषय' विचार ॥  
 धर्म ध्यान अधिकारी जान । चर, पंच, पट, सन्तम गुणवान् ॥३६॥

गुण ध्यान के स्वामी:—

मूल:—गुणवं चायं पूर्वविदः ॥३७॥

जब बसों की विपत्ति जान । मो प्रचार हो प्राप्ति समान ॥  
 ताहि समय भी होवे स्थान । 'गुह्य त्रिशा प्रतिपाद' बतान ॥  
 परहि स्थान पुनि सुवन कहाए । 'धुनरत त्रिशा-निबन्धि' कहाए ॥  
 आगोखान तथा जब योग । होत न विपत्ति मात्र प्रयोग ॥  
 हमन-बनन सब हो कर जाए । आगव सब समस्त नगाए ॥  
 ताकि निर्जरा पैरा होय । बहूँ अयोग-बेबसी होय ॥  
 ध्यान अग्नि में बसं जगाए । भाव गुह्य कथन बन जाए ॥  
 रत्नकर मुनि आनन जान । तब पावे निर्वाण मदान ॥४४॥

सम्पद्विषयों के असमान निर्जरा—

मूलः—सम्पद्विष्टि आवक-विरमानस्यवियोजक दर्शनमोह-  
 क्षयशीतलस्योपशममोह-क्षय-धीणमोह-त्रिशाः  
 कमलोऽस्येय-गुणनिर्जरा ॥४५॥

भाषाः— 'सम्पद्विष्टि' 'आवक' मान ।  
 'विरत', 'अनन्तवियोजक' जान ॥  
 'दर्शनमोह क्षयक', 'उपशमक' ।  
 पुनि 'उपशान्त मोह' अथ 'क्षयक' ॥  
 'धीण मोह', 'त्रिशा' जो निर्जरा ।  
 'असंस्पृष्ट गुण' कमलः करा ॥४५॥

४५वें गुण की व्याख्याः—

बसं निर्जरा सीजे जान । सब में होती नही समान ॥  
 दस स्थान विगुह्य निर्जरा । अगुह्यात गुण कमलः करा ॥  
 'अविरत सम्पद्विष्टि' जान । पहुँचे से चौथे गुणधान ॥

सीधा वदन, खुले अथ नैन । स्वासोष्वास मंद सुख  
मस्तक उर या नाभि प्रदेश । पर कर मन एकाग्र वि  
दांत मिले, मुख स्मिति होय । ध्यान मुमुक्षु बताया सं  
सत्तम से अष्टम गुणयान । द्रव्य, भाव परमागू ध्या  
सोइ समय होवे बीचार । ध्येय, वचन, योगहि वितथा  
मोहनीय शय, उपजन हेतु । सों 'पृथक्त्व वितर्क'हि सेतु

मोहनीय के शय हिन जान । सो ध्याता मन निरव्य ठान ॥  
दूर हटा सोनों बीचार । सुख अनन्तगुणा बिनवार ॥  
मन थिर कर द्वादस गुणयान । पीये पुन. न हटता जान ॥  
धाति-कर्म ध्यान-अग्नि जनाय । सो 'एकत्व-वितर्क' कहाय ॥

कर्म पटल हट, गुर्य समान । केवल ज्ञान प्रकट हो जान ॥  
या तव पद केवनि, अर्हन्त । करें विशार आयु पर्यन्त ॥  
वेद, नाम, गीत, आयु बताय । अन्तर्मुहूर्त दोष रह जाय ॥  
तने वचन, मन, वादर-काय । गूढम काय योगहि रह जाय ॥  
ताहि समय जो होवे ध्यान । 'गूढम किश प्रतिपात्' बगान ॥  
अन्तर्मुहूर्त आयु हो दोष । तब कर्मन यति अधिक विशेष ॥  
समुद्धान करने मुनि मान । भाट समय लगने है जान ॥  
बाग्य प्रदेशहि दग्धकार । प्रथम समय 'कैताप' विचार ॥  
पुनि कषाट आहार बनाए । तीये प्रउर रूप 'कैताप' ॥  
बीये समय करें विचार । आत्मप्रदेशहि मोहकार ॥  
मोही जन से पटने जाए । अष्टम समय शरीर समाए ॥

तब कर्मों की स्थिति ज्ञान । तो प्रचार हो आनु समान ॥  
 साहि समान ओ होवे ज्ञान । 'सूक्ष्म त्रिषा प्रविष्टान' वसान ॥  
 यशहि त्याग पुनि युवन बनाए । 'धुस्तरन त्रिषा-निबनि' बहाए ॥  
 बराओरछाग मया धन योग । होएँ न विचिन साथ प्रयोग ॥  
 हसन-चनन मर हो दह जाए । आगव धव समस्त नगाए ॥  
 शक्ति निर्जरा वैरा होव । कहँ अजोन-वेवसी सोव ॥  
 ध्यान भक्ति में कर्म जमाए । आत्म मुक्त बचन बन जाए ॥  
 रत्ननयन मुन मानस जान । तब पावे निर्वाण महान ॥४४॥

सम्बद्धदृष्टियों के सममान निर्जरा —

मुनः—सम्बद्धदृष्टि आत्म-विरतानन्तवियोजक दानमोह-  
 क्षययोगमोहोपशान्तमोह-क्षयक-क्षीणमोह-जिना-  
 कमलोत्पल्येज-गुणनिर्जराः ॥४५॥

भाषाः— 'सम्बद्धदृष्टी' 'आत्मक' मान ।  
 'विरत', 'अनन्तवियोजक' ज्ञान ॥  
 'दानमोह क्षयक', 'उपशान्त' ।  
 पुनि 'उपशान्त मोह' अह 'क्षयक' ॥  
 'क्षीण मोह', 'जिन' जी निर्जरा ।

'अतएवांत गुण कमराः करा ॥४५॥

४५वें सूत्र की व्याख्या—

कर्म निर्जरा सौत्रे जान । सब में होती नहीं समान ॥  
 दस स्थान विगुह्य निर्जरा । अतएवांत गुण कमराः करा ॥  
 'अविरत सम्बद्धदृष्टी' जान । पक्षे से चौथे गुणधान ॥

'श्रावक' अगुवन सहित कहाए । पंचम गुणस्थान बतलाए ॥  
 'विरत' महामुनि कहिए सोय । गुणस्थान षट, सप्तम जोय ॥  
 अनन्तानुबन्धी नहि जोय । सोइ 'अनन्त वियोजक' होय ॥  
 दश-मोह सम्पूर्ण नसाए । 'दर्शन मोक्ष दापक' कहलाए ॥  
 साधु 'उपशमक' होते जान । अठ, नौ और दसम गुणधान ॥  
 चारित-मोह नसावे जान । 'उपशान्त'हि म्यारह गुणधान ॥  
 श्रेणि 'क्षपक' आरोही सोय । चारित-मांह सनिक नहि जोय ॥  
 सो भी अठ, नौ, दस गुणधान । उपशम, नाश भेद है जान ॥  
 'क्षीण-मोह' द्वादस गुणधान । चारित-मोह न नाम निशान ॥  
 चार घातिया पूर्ण नसाए । 'जिन' तेरह गुणधान कहाए ॥  
 चव से ले आगे गुणधान । अधिकाधिक्य विशुद्धि बतान ॥  
 असंख्यात गुण कर्म नसाए । क्रम आगे-आगे उयो जाए ॥४५॥

निर्गन्धों के भेद :—

मूल :—पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रन्थाः ॥४६॥

भाषा :— निर्ग्रन्थाहि पंच भेद बतलाए ।

प्रथम 'पुलाक', 'वकुश' कहलाए ॥

प्रथ 'कुशील', 'निर्ग्रन्थाहि' चार ।

'स्नातक' हो पंचम चितधार ॥४६॥

४६ वें सूत्र की व्याख्या :—

उत्तर गुण से कोरे निरे । मूल गुणों में जब सब गिरे ॥  
 बिना पके जो घान समान । सो 'पुलाक' कहलाते जान ॥  
 मूल गुणों को पावें जोय । दिखें मुदर्शन इच्छा होन ॥

मभी निधेय आचार । तत्र उपर्युक्तहि मोह विचार ॥  
 मे मम इच्छा सा जाय । श्रद्धा दासि मे वरहि उपाय ॥  
 मुनि 'बहुत' मन्त्रिनिधि मान । पट मन्दिर उद्यो चरयेनार ॥  
 मुनीन' के धेइ दयाए । 'प्रतिसेवना', बधाय' बहाए ॥  
 मूल-द्वार, गुण जाय । मूल-द्वार उन्मत्त सोय ममान ॥  
 'प्रतिसेवना' न दायें सोय । ममान द्वाए प्रतिसेवन होय ॥  
 'मन्त्रिनिधि' मन्त्रिनिधि वन दिदा । नाम-बधाय बुधील'हि दिदा ॥  
 नीय का उदय न मान । पानि बसे जन रेण ममान ॥  
 न जान निहट ही होय । मुनि 'निधेय' बहायें सोय ॥  
 ममो 'निधेय' दमान । जो म्यागद, धारह गुणमान ॥  
 मम सोइह गुणमान । के मुनि है सर्वज्ञ समान ॥  
 मम सोइ ही विनताए । ममो वेदनि मनाग' बहाए ॥  
 ममिबता ही पारिज । मम निधेय विज ॥  
 मम परिपट मन्त्र-दाय । ममगद'टी मभी बहाय ॥४६॥

मम आदि मुनियों की अन्य विनताएँ —  
 :— सम-श्रुत-प्रतिसेवना—तीर्थ-विह्वल-सेवयोत्पाद-  
 रमान-विह्वल, साध्या ॥४७॥

या :— निर्गन्धादि मुनिन में मान ।  
 निम्न अपेक्षा अंतर जान ॥  
 'संयम', 'धृत' में अंतर लहें ।  
 'प्रतिसेवना', 'तीर्थ' पुनि कहें ॥  
 'सिग' हि 'सेवया' अंतर जान ।  
 'उपवास' हि अहं भेद 'स्वान' ॥४७॥

# तत्त्वार्थ सूत्र

का

## पारिभाषिक शब्द संकेत

अकण्ठ्य वेदनीय	१२४.११	अतिचार	१०७.१३
अकाम निर्भरा	८९.९	अविनिमयिमाण	१०९.१५
अकाल मरण	३२.२५	अनिभारारोगण	१०८.२१
अक्षिप्त ज्ञान	८.१५	अदर्शन परिग्रह	१४२.९
अगारी	१०४.२२	अधर्म द्रव्य	१९.१६
अगुरुत्व नाम	१२७.१९	अधिकरण	८२.१
अज्ञ प्रविष्ट	१०.९	अधिकरण अनुषोण	४.२०
अज्ञ बाध	१०.१०	अधिगम्य	२.१८
अज्ञोपात्त नाम	१२६.१८	अधोऽविद्यम	१११.१३
अज्ञान भाव	८९.२३	अध्व्य ज्ञान	८.१५
अज्ञान परिग्रह	१४२.८	अधोपोक	३१.९
अज्ञान निष्काल्य	११०.२२	अनगारी	१०४.११
अक्षय दर्शन	२०.१४	अनय अतिचार	११०.२१
अक्षित योगि	२८.२०	अननुगामी	११.१०
अक्षीर वन भावनात्	१७.१०	अनभ विषयक	१६०.३
अक्षीय	१५.९	अनन्यानुबन्धी	१२६.१३
अक्षीवाधिकरण	८३.१	अनर्थ दण्ड	११२.१४
अक्षुब्ध	७३.१४	अनादिग	७५.२२
अक्षुब्ध	९५.२२	अनवधिग	११.१४
अक्षय	२९.९	अनन्य बाधक	१४९.११
अक्षी ईश	४२.१४	अनन्द	१३.१३

• इन शब्दों में पहले शब्द गुण के और दूसरे शब्द परिण के मुख्य हैं ।

અરક	૨૦.૧૧	ઝરણાન વચ્ચ	૨૮.૯
અરક શરીર	૧૨.૧	ઝરણીય અઝરણ	૧૨૯.૧૮
અરક	૭૩.૯	ઝરણીય પરિણીય અનર્થ	૧૧૨.૨૪
અરક	૧૧૦.૧૬	ઝરણીય	૨૨.૯
અરક	૪૯.૪	ઝરણીય	૧૫૦.૧૫
અરક	૧૫૨.૧૯	ઝરણીય	૧૦૬.૫
અરક	૮૦.૨૨	ઝરણીય	૧૪૮.૧૮
અરક	૯૯.૧૨	ઝરણીય	૧૪૯.૧૪
અરક	૭.૨૨	ઝરણીય	૧૭.૫
અરક	૮.૧૪	ઝરણીય (મુલ)	૧૯૦.૯
અરક	૧૨૯.૪	ઝરણીય	૧૧૧.૧૨
અરક	૧૨૭.૨૪	ઝરણીય	૧૬૬.૧૭
અરક	૭૩.૧૧	ઝરણીય	૧૫૫.૧૦
અરક	૧૨૯.૨૪	ઝરણીય	૧૪૦.૩
અરક	૭૫.૨	ઝરણીય	૮.૧૪
અરક	૧૨૮.૧૩	ઝરણીય	૧૧૭.૧૯
અરક	૪૩.૯	ઝરણીય	૧૬.૫
અરક	૧૨૭.૨૩	ઝરણીય	૧૩૫.૧૧
અરક	૨૪.૧૦	ઝરણીય	૧૩૫.૧૧
અરક	૮૩.૨૦	ઝરણીય	૧૩૫.૧૧
અરક	૯૧.૨૦	ઝરણીય	૧૩૫.૧૧
અરક	૮૪.૮	ઝરણીય	૧૩૫.૧૧
અરક	૧૨૭.૨૧	ઝરણીય	૧૩૫.૧૧
અરક	૧૪૯.૬	ઝરણીય	૧૩૫.૧૧



अर्धं नराच	१२७.११	अमत्राप्तामृषाटिका	१:७ ११
अर्पित	७५/२१	अमाता वेदनीय	१२२ २१
अलाभ परिपह	१४२ ३	अगिद्वन्व	११.१८
अलोकाकाश	६८ १३	अस्थिर नाम	१२८.२०
अल्प ज्ञान	८.१४	अहमिन्द्र	५६.१६
अल्पबहुत्व	५ १२	आ	
अवगाहना	१६८ १२	आकाश इष्य	६५ १६
अवग्रह	७ २१	आकिचन धर्म	१३९.८
अवधि ज्ञान	५.१६	आशोण परिपह	१४१.२३
अवध	९९८	आचार्य	१४९.१४
अवमोक्षार्थं धार्यतव	१४६ १२	आज्ञा विषय	१४४.१४
अवमपिणी	४३ ९	आतप नाम	१२७ २३
अवस्थिति	४३ २०	आत्मरक्ष	४८.१०
अवाम	७ २४	आदान निरोपण	९६ १३
अविपारु निजंरा	१३२.२३	आदेय नाम	१२८.२१
अविभागी प्रतिष्ठेद	७६ ६	आनयन	११२.६
अविनेय	१००.१२	आनुपूर्व्य	१२७ १७
अशिरति	११८.३	आभिषोय	४८ १४
अशरण अनुप्रेक्षा	१४०.१	आम्नाय स्वाध्याय	१५०.७
अशुचि "	१४०.५	आमुचर्म	१२५ १
अशुभ नाम	१२८.१३	आरम्भ	८२.१९
अशुभ यौन	८०.४	आर्जव धर्म	१३९.४
अशुभ धुनि	१०९.३	आर्त ध्यान	१५१.२१
अः	७५.७	आलोचन वान भोजन	९६.१४
असंगत्व	१६७.९	आलोचना	१४८.५
अमर्श	२६.४	आमादना	८४.८

माहारक	२७.११	उपपाद जन्म	२८९
माहारक शरीर	३२.१	उपभोग्य अतराय	१२९.१८
इ		उपभोग्य परिभोग्य अनर्थ	११२.२४
इत्य सप्तम	७३.९	उपयोग	२२९
इत्यरिषा	११०.१६	उपधि	१५०.१८
इष्ट	४९.५	उपवास	१०६ =
इष्ट वियोग	१५२ १९	उपस्थापना	१४८.१८
ई		उपाध्याय	१४९ १५
ईर्ष्या आसक्त	८०.२२	उपशम	१७.५
ईर्ष्या समिति	९६ १२	उपशान्त (गुण०)	१९०.६
ईहा	७ २२	उद्धारनिष्ठम	१११ १२
उ, ऊ		ऊर्ध्वगति	१९९.१७
उत्पन्न (ज्ञान)	८.१५	ए	
उच्च मोक्ष	१२९.४	एकत्रय वितर्क	१५८.१०
उद्धास नाम	१२७ २४	एकत्रय अनुश्रुता	१४० ३
उत्तर	७३.११	एक विधि	८.१५
उत्पृष्ट स्थिति	१२९ २४	एकत्रय विध्यात्	११७.१६
उत्पाद	७५.२	एवंधून नय	१६.५
उत्तम समिति	१३८.१३	एयणा समिति	१३८.११
उत्तमविणी	४३.९	औ, अं, अ	.
उद्योग नाम	१२७.२३	औदयिक भाव	१७.१९
उपकरण इन्द्रिय	२४.१०	औदारिक शरीर	२९ ४
उपकरण समयोग	८३.२०	औपशमिक चरित्र	१८.१२
उपगृह्य	९१ २०	औपशमिक भाव	२१.१
उपपात	८४.८	औपशमिक सम्पत्कत्व	१८.१८
उपपात नाम	१२७.२१	अंतर अनुयोग	५.१०
उपधार विनय	१४९.६	अतर्पुर्ण	१५१.१२

अर्थ नराच	१२७.११	अंगवस्त्राणां पाटिका	१२७.११
अपित	७५.२१	अमाना वेदनीय	१२२.२३
अलाभ परिपह	१४५.३	अमिद्वय	९१.१८
अलोकाकाश	६८.१३	अस्थिर नाम	१२८.२०
अल्प ज्ञान	८.१४	अहमिन्द्र	५४.१६
अल्पबहुत्व	५.१२	आ	
अवगाहना	१६८.१२	आकाश द्रव्य	६५.१६
अवग्रह	७.२१	आकिंचन धर्म	११९.८
अवधि ज्ञान	५.१६	आश्लेष परिपह	१४१.२३
अवध	९९.८	आचार्य	१४९.१४
अवमोक्षार्थं बाह्यतप	१४६.१२	आज्ञा विषय	१५४.१४
अवमर्षिणी	४३.९	आतप नाम	१२७.२३
अवस्थिति	४३.२०	आत्मरक्ष	४८.१०
अवाप	७.२४	आदान निशेषण	९६.११
अविपाक निर्जरा	१३२.२३	आदेय नाम	१२८.२१
अविभायी प्रतिच्छेद	७६.६	आनयन	११२.१
अविनेय	१००.१२	आनुत्पत्त्यं	१२७.१७
अदिरति	११८.३	आप्रियोष्य	४८.१४
अशरण अनुश्रुता	१४०.१	आम्नाय स्वाध्याय	१५०.७
अशुचि "	१४०.५	आयुधर्म	१२५.१
अशुभ नाम	१२८.१३	आरम्भ	८२.१९
अशुभ योग	८०.४	आजंय धर्म	१३९.४
अशुभ धृति	१०९.३	आर्ग ध्यान	१५१.२१
अ ।।	७५.७	आलोचन पान भोजन	९६.१४
असंगत्व	१६७.९	आलोचना	१४८.५
अगती	२६.४	आसादना	८४.८
असमत् भाव	२१.१७	आलय	१०९.१०



पुलाक	१६०.२१	प्रमत्तसयत्त	११८.१८
पुष्कर द्वीप	४५.५	प्रभावना	९२.३
पूर्व प्रयोग	१६७.८	प्रवचनपररुसत्त्व	९२.१८
पृष्ठा	१५०.५	प्रवीचार	४९.११
पृथक्कर विनैक	१५८.६	प्रगस्त	१२८.३
पोन	२९.१०	प्रायश्चित्त	१४७.१०
प्रकीर्णक	४८.१३	प्रेष्य प्रयोग	११२.४
प्रकृति बंध	११९.२४	प्रोष्य	१०६.१०
प्रचया	१२२.१५	प्रोष्योपशान	११३.१४
प्रचला-प्रचला	१२२.१६		
प्रमाणपरिपक्ष	१४३.२३	बहुश	१६१.३
प्रतिपक्ष	९२.१५	बन्ध	११७.१
प्रतर	७३.१३	बन्ध अनिचार	१०८.१७
प्रतिक्रमण प्रारंभ	२१५.६	बन्ध द्वैत	१६७.१०
प्रतिपक्ष व्यवहार	११०.८	बन्ध नाम ५	१२६.२०
प्रतिषेधना	१६०.१६	बहु ज्ञान	८८
प्रतिषेधना कुशीन	१६१.६	बहुविध ज्ञान	८८
प्रत्यक्ष ज्ञान	६.१३	बाह्य नाम	१२८.१३
प्रत्यक्षान	९२.१६	बाह्य माध्यम	१६३.१६
प्रत्यक्षानुबन्ध	१२६.१५	बाह्य मय	८८.७१
प्रत्यक्ष शक्ति	१२८.६	बाह्य मय	१६६.२०
प्रत्यक्षबुद्ध	१६०.०	बाह्य मय बुद्ध	११९.१०
प्रत्यक्ष बंध	१२३.१	बाह्य मय बुद्ध	१६०.८
प्रमाण	८३	बाह्य मय	१०२.२३
प्रमाण	११८.३	बाह्य मय धर्म	११९.१
प्रमाण अर्थ	१०६.१		
प्रमाण	८६.६		
प्रमाण	१०१.१३		

भवनवासी	४७.४	भार्गव प्रभावना	९२.३
भय	२२.४	भादर्य धर्म	१३९.३
भद्रगात्र	३६.३	भावा	८२.१७
भरत क्षेत्र	४२.९	भृत्य	१०७.२
भाव अनुयोग	५.१२	मिथ्यादर्शन	११७.११
भाव निक्षेप	३.२१	मिथ्या श्रुत्य	१०४.२
भावना	९६.६	मिथ्यापदेश	१७१.६
बावेन्द्रिय	२४.१७	मित्रभाव	२०.१
भव सत्वर	१३६.८	मुक्त	१३१.८
भाषा समिति	१३८.१०	मूकता	१०३.११
भुक्तपाल संयोग	८३.१९	मूलगुणान्वर्तना	८३.१३
भेद	७४.८	मेघ विरि	३७.५
भोग	१०६.११	मैयुन	१०२.२०
भोगात्मक	१२९.१६	मोक्ष	१६४.२१
		मोहनीय कर्म	१२३.१
म		मौख्य	११२.२२
मतिज्ञान	७.८		
मति ज्ञानावरण	१२१.१५	मयाख्यात चारित्र्य	१४५.१८
मनपर्वत ज्ञान	१३.१३	मश नीतिनाम	१२८.२२
मध्यलोक	३६.१	माचन परिपह	१४२.२
मनोगुणि	९६.१६	योग	७९.४
मनोज्ञ	१४९.२३	योग वचना	८९.६
मरण, भसा	११५.१६	योग सभाति	१५७.२०
मल परिपह	१४२.६		
महावन	९५.२२	रति मोहनीय	१२४.९
मात्मन	८४.६	रत्न	७२.२
मानुषोत्तर	४५.१२	रत्न परित्याग	१४६.१५
मायाचार	८७.१४	रुद्रोपमाख्यात	१०९.११
माया श्रुत्य	१०४.१		

पुसाक	१६० २१	प्रमत्तसयत	११८.१८
पुष्कर झीर	४५.५	प्रभावना	९२.३
पूर्व प्रयोग	१६७.८	प्रवचनपत्रसत्त्व	९२.१८
पृष्ठता	१५०.५	प्रवीचार	४९.११
पृथक्त्व विनैक	१५८.६	प्रगलन	१२८.३
पीन	२९.१०	प्रायश्चित्त	१४७.१०
प्रकीर्णक	४८.१३	प्रेष्य प्रयोग	११२.४
प्रकृति बंध	११९.२४	प्रोग्र	१०६.१०
प्रक्षमा	१२२.१५	प्रोग्रयोग	११३.१४
प्रक्षमा-प्रक्षमा	१२२.१६		
प्रक्षामरिपद	१४३.२३	वकुल	१६१.३
प्रतिबन्धन	९२.१५	बन्ध	११७.१
प्रत्य	७३.१३	बन्ध प्रतिवार	१०८.१७
प्रतिबन्धन प्रारंभ	२१५.६	बन्ध छेद	१६७.१०
प्रतिबन्धन व्यवहार	११०.८	बन्धन नाम ५	१२६.२०
प्रतिबन्धना	१६२.१६	बन्धु ज्ञान	८८
प्रतिबन्धना कुशीन	१६१.६	बन्धुविष ज्ञान	८८
प्रत्यक्ष ज्ञान	६.३३	बाह्य नाम	१२८.१३
प्रत्यक्षज्ञान	९२.१६	बाह्य मायाभाव	१६३.१६
प्रत्यक्षज्ञान-बाह्य	१२६.१५	बाह्य नाम	८८.२१
प्रत्यक्ष ज्ञान	१२८.६	बाह्य नाम	१६६.२०
प्रत्यक्षज्ञान	१६९.९	बाह्य नाम	१६९.१०
प्रत्यक्ष ज्ञान	१२३.१	बाह्य नाम	१६०.८
प्रत्यक्ष	८७	बाह्य नाम	१०७.२३
प्रत्यक्ष	११८.५	बाह्य नाम	१३९.९
प्रत्यक्ष	१०६.९		
प्रत्यक्ष	८६.६		
प्रत्यक्ष	१०६.९		

रतेरेरी	७७ १८	सधान	७४.८
यपरोपण	१०१ १३	सधात नाम ६	१२६ २१
मु-मंग तप	१४७ १२	सज्ञा	७.१०
" प्रायश्चित्त	१४८ १२	सज्ञी	२६ १
यु स क्रिया निवर्तिन		सञ्चयन	१२४ १६
(शुक्लध्यान)	१५६ ११	समूठन जग्म	२८.८
यवन सकाति	१५७ १८	मयमा मयन	८८.२४
नि	९५ २	सयता सयन	११८.१५
ती	१०४४	सयम धर्म	१३९ ६
श		सयोग	८३.७
कि	१०७.१७	सरम्भ	८२ १८
वि नय	१५.१९	सकर	१३६ १
विशानुना	११२.५	सवेय	९२ ७
वि भद	७२ १५	मशय मिध्यात्व	११७.२०
वि परिपह	१४१.२२	मगार अनुपेक्षा	१४०.२
वीर नाम ५	१२६.१७	सस्थान नाम ६	१२६.२२
व्य	१०३.२२	सस्थान दिव्य	१५४.१९
वृम नाम	१२८.१३	सस्थान	७३.७
वृम योग	८० ९	सहनन ६	१२७.५
वशाज्जत	१०६ १८	सचित्त यो ने	२८.२०
वि	१४९.१७	सचित्त	११४.२
विक	१२४ ९	सचित्त अपिघान	११४.१६
विच	८४.१७	सन अनुयोग	५.८
वाचक	१०५ ५	सत्कार पुरस्कार	१४२.७
वृत्तज्ञान	५.१६	सत्यवत भावनाए	९७ १
वृत्त	८९.९	समचतुरण सस्थान	१२६.२३
वृत्तज्ञानावरण	१२१.१६	समभिरुठ नय	१६.३
वृत्ति	२६.१७	समय	१०६.५
स		सम्भम्भ	८२.१८
वक्रांति	१५७.१३	समारम्भ	८२.१८
वदया	५.८	समिति	१२६.१९
वप्रह नय	१५ १४	समन्वाहार	१५२.१५
वध	८६ १०	सम्भक्त दर्शन	२ १२



रोग परिपह  
रौद्र ध्यान

स

सन्धि ५  
सन्धि (इन्द्रिय)  
सन्धि (प्रत्यय)  
सवणीदधि  
सामान्तराय  
सिंग  
लेख्या ६  
लेख्या (द्रव्य)  
लोक अनुप्रेक्षा  
लोकालास  
लोकपाल देव  
लोकालोक देव

व

बचन मुक्ति  
बय बृषभ-भाराच सहनन  
बय भाराच सहनन  
बय अनिचार  
बय परिपह  
बर्नना  
बर्णमान अबाधि  
बर्ण  
बाचना  
बामन मरुधान  
बागमन्द  
बिबिदि-मा  
बिबिदि-मिदि  
बिबिदि  
बिबिदि  
बिबिदि

१४२.४

१४३.१४

२०.१७

२४.२२

२१.१९

३६.९

१२९.१५

१६३.२

२१.१९

५८.८

१४०.७

६८.१४

४९.३

५९.१

९६.१६

१२७.७

१२७.८

१०८.१८

१४३.१

७१.३

११.११

७२.३

१५०.४

१२३.३

९२.२

१०३.२०

१०३.२०

१२३.३

४६.१२

६१.२

विनय तप

विनेय

विपरीत मिथ्यात्व

विषाक धर्मध्यान

विपुल मति

विमान

विमोचिताकास

विरत

विरुद्धराज्यातिशय

विविध शम्यासन

वृत्तपरीक्षाध्यान

विवेक (प्रापश्चिन)

विशुद्धि

विश्वानन्द

विषय

विषय संरक्षणानन्द

विद्यायोगिनि

वीचार

वीरराज

वीर्य

वीर्याग्निराय

वेद ३

वेदनीय

वेदना ज्ञानध्यान

वैदिक शरीर

वैदिक मिथ्यात्व

वैमानिक देव १२

वैद्य-वृत्त

वैराग्य

वदन

वन्दन देव ८

वज्र

वज्र-वृत्त

१४३.११

१००.१२

११३.१८

१२४.१८

११.२१

१४.१२

१३.१४

१६.११

११०.४

१४६.१३

१४६.११

१४८.१२

१२.१४

८९.९

१२.१८

१४३.२०

१२८.१

१४३.९

११६.१४

८९.२६

१२९.१८

३१.१५

१२०.२१

१४२.२०

२९.२६

११३.२१

२६.६

१४३.११

१०१.७

१०१.७

१०१.७

१०१.७

१०१.७

१०१.७



साम्यकृत्व	१६६.४	स्त्री परिपक्व	१४१.२०
साम्यगृष्टि	१०८.३	स्त्री वेद	८६.१९
सयोग केवली	११८.२०	स्नेहानन्द	१५३.१९
सराग सयम	८८.२३	स्नय	९७.८
सल्लेखना	१०६.१९	स्थावर	१२८.९
सविपाक निजंरा	१३२.२१	स्थिते वध	११९.१२
सहसा निक्षेप	८३.१८	स्थिर नाम	१२८.१९
सर्वार्थसिद्धि	५५.२०	स्थावर जीव ५	२३.११
साकार मन्त्र भेद	१०९.१४	स्थागना निक्षेप	३.१६
सागर (आयु)	२५.१७	स्थितीकरण	९२.१
साता वेदनीय	१२२.२२	स्नातक	१६१.९२
साधन अनुयोग	४.१९	स्पर्श ८	१२७.१४
साधु	१४९.२२	स्पर्शन	५.९
साम्परायिक आख्य	८०.२१	स्मृति	७.९
सामानिक	४८.७	स्थिति अनुयोग	४.२०
सामायिक	९२.८	स्मृत्यनुपस्थापन	११३.९२
सामायिक चारित्र	११३.१	स्मृत्यन्तराधान	१९१.१६
सासादन	११८.१३	स्पर्श गुण	७१.२३
सामान्य शरीर	१२८.७	स्वयभूरमण	३६.२२
सिद्धत्व	१६६.५	स्वर्ग १६	५५.१
सुखानुवध	११५.१८	स्वमुख अनुमदन	१११.२३
सुभग नाम	१२८.१०	स्वाध्याय	१४७.१२
सुखर नाम	१२८.१२	स्वामित्व अनुयोग	४.१८
सूक्ष्म क्रिया प्रनिपात	१५८.१५	स्वास्ति	१२७.२
सूक्ष्म साम्पराय चारित्र	१४५.१६		
सूक्ष्म शरीर	१२८.१४	ह	
सूक्ष्मपन	७६.६	हास्य	१२४.९
सौमनस	३८.६	हिता	९५.१०
स्वय	७३.२१	हिमादान	१०६.२
स्तेन प्रयोग	११०.२	हितानन्द	१५३.१७
स्तेय	९५.११	हीनाघिन मानोन्मान	११०.९
स्त्यानगृष्टि	१२२.१७	हीयमान	११.१२
		हुक्क सस्यान	१२७.४



प्रतीक्षा कीजिए ।

छल रहा है

प्रतीक्षा कीजिए ।।

[ श्री नन्द किशोर जैन, एम० ए० लिखित ]

## प्रज्वलित प्रश्न

सामाजिक कुरीतियों एवं समस्याओं का दिग्दर्शक ड्रामा

इसमें केवल समस्याएँ ही नहीं, उनके अनूठे तथा नवीन परस्पर  
फलप्रद समाधान भी हैं ।

ऐसाछा, धर्म के बाह्यादर, अज्ञान, अनिशा, दहेज, रिषवा-  
विवाह, बालाघन, प्रेम रिवाज, धर्म एवं काम निशा, रिवाहपूर्व  
तथा रिवाहेतर काम नवय, रिपड़े सुक्क-सुक्कियाँ, कंगन आदि  
अनेक समस्याओं के सम्बन्ध में नये दृष्टिकोणों से विचार ।।

यह प्रेरणाप्रद ड्रामा जो दिनांक १२-२-७० को जैनग्राम,  
दामोदर, जमनऊ में मंचस्थ हो चुका है, अपने परिष्कृत तथा  
मनोविनोद में प्रकाशनाधीन है । अभी से अपनी प्रति गुराडित  
करा लें ।

एक लयावधिक क्रूर माण, गुणिशित बट्ट, रिषवा पुत्री, कंगन  
के पीछे दीवाने पुन-पुनियों की रोचक गाथा ।

इस गहरा अल कृष्ण मोनने के लिए निश्चय हो जायेंगे तथा  
वरुण अलके मूर्त में निश्चय रहेंगे :— 'हाँ, टीक लो है ।'



